Table of Contents

अंतर्वस्तु

On_the_Heights_of_Despair_-_Emil_M_Cioran

निराशा की चरम सीमाओं पर

निराशा की चरम सीमाओं पर

निराशा की चरम सीमाओं पर

निराशा की चरम सीमाओं पर

द्वारा
ई. एम. सिओरान
अनुवादक और प्रस्तावना सहित
इलिंका ज़रीफ़ोपोल-जॉनस्टन
शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, शिकागो और लंदन
शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, शिकागो 60637
यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस लिमिटेड, लंदन
(सी) 1992 शिकागो विश्वविद्यालय द्वारा
सभी अधिकार सुरक्षित। 1992 में प्रकाशित।
अमेरिका के संयुक्त राज्य अमेरिका में छपी
ISBN (कपड़ा): 0-226-10670-5
मूल रूप से फंडासिया पेंटू लिटरेचर ^ आईआर्ट "किंग कैरोल II," 1934 द्वारा पे कलमील डिस्पेरी के रूप में प्रकाशित।
लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कैटलॉगिंग-इन-पब्लिकेशन डेटा
सिओरन, ई.एम. (एमिल एम.), 1911-
[निराशा की चरम सीमा पर। अंग्रेज़ी]
निराशा की ऊंचाइयों पर / ई.एम. सियोरान; इलिंका ज़रीफ़ोपोल-जॉनस्टन द्वारा अनुवादित और परिचय सहित।
पी. सेमी.
अनुवाद: निराशा की चरम सीमाओं पर।
1. दर्शनशास्त्र। I. शीर्षक।
बी99.आर652सी5613 1990
अंतर्वस्तु
आभारोक्ति vii
प्रस्तावना: सियोरान ix की कल्पना करना
गीतात्मक होने पर 3
सब कुछ कितना दूर है! 6
जीने की इच्छा न होने पर 8
बेतुकेपन के प्रति जुनून 10
दुनिया और मैं 14
थकान और पीड़ा 16
निराशा और विकृत 18
पागलपन की पूर्वसूचना 20
मृत्यु पर 22
उदासी के एक रूप के रूप में उत्साह 29

कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है 33
परमानंद 35
वह दुनिया जिसमें कुछ भी हल नहीं होता 37
विरोधाभासी और महत्वहीन 39
दुख पर 41
कुल असंतोष 43
अग्नि स्नान 45
विघटन 46
शरीर की वास्तविकता पर 48
मुझे नहीं पता 49
व्यक्तिगत और ब्रह्मांडीय एकाकीपन पर 50
सर्वनाश 52
कष्टों का एकाधिकार 54
पूर्ण गीतात्मकता 57
अनुग्रह का अर्थ 59
करुणा का व्यर्थता 61
शाश्वतता और नैतिकता 62
क्षण और अनंत काल 64
इतिहास और अनंतकाल 66
अब और पुरुष नहीं रहना 68
जादू और घातकता 70
तुच्छता का रूपांतरण 101
अकल्पनीय आनंद 72
पीड़ा की अस्पष्टता 73
सब कुछ धूल है 74
प्यार 75
प्रकाश और अंधकार 79
त्याग 81
प्रेम के रूपांतरण पर 84
अनिद्रा के आशीर्वाद 83
मनुष्य, अनिद्रा का शिकार प्राणी 85
सत्य, क्या शब्द है! 87
ज्वालाओं की सुंदरता 88
ज्ञान की कमी 89
अराजकता की वापसी 90

विडंबना और आत्म-विडंबना 91
गरीबी पर 93
क्रॉस से उड़ान 95
अनंतता का पंथ 98
दुख का बोझ 103
कार्य के माध्यम से गिरावट 104
अंत का बोध 106
पीड़ा का शैतानी सिद्धांत 108
एक अप्रत्यक्ष पशु 111
असंभव सत्य 112
व्यक्तिपरकता 113
होमो... 114
संक्षेप में प्रेम 115
कुछ मायने नहीं रखता 116
बुराई के स्रोत 117
सौंदर्य के जादुई करतब 119
मनुष्य की असंगति 120
आत्मसमर्पण 122
खामोशी का सामना 123
द डबल एंड हिज आर्ट 124
बकवास 126
ई. एम. सियोरान: एक संक्षिप्त कालक्रम 127

स्वीकृतियाँ

मैं ई. एम. सियोरान को इस पुस्तक को सौंपने के लिए, मातेई कैलिनेस्कु को हमें एक साथ लाने के लिए, श्रीमती सिमोन बोउए और जेनी लाइट्नर को उनके अत्यंत उपयोगी संपादकीय सुझावों के लिए, मेरे चचेरे भाई पेट्रो पिडल नैनो को समुद्र के किनारे स्थित उनके शांत घर के लिए धन्यवाद देती हूँ जहाँ इस अनुवाद का अधिकांश कार्य पूरा हुआ, और अंत में, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात, मेरे पति केनेथ आर. जॉनस्टन को धन्यवाद देती हूँ, जिनकी अंग्रेजी भाषा की उत्कृष्ट समझ इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से झलकती है और जिसने इसे दोबारा जीवंत बनाने में मदद की।

यह अनुवाद इंडियाना विश्वविद्यालय (अनुसंधान और स्नातक विकास कार्यालय और रूसी और पूर्वी यूरोपीय संस्थान) और एंड्रयू डब्ल्यू मेलन फाउंडेशन से प्राप्त अनुदान के कारण संभव हो पाया है।

- इलिंका ज़रीफ़ोपोल-जॉनस्टन -

परिचय:

सियोरान की कल्पना करना

लेखक की कल्पना करना किसी भी पठन अनुभव का अभिन्न अंग है। अनुवादक के लिए, आम पाठक की तुलना में कहीं अधिक, लेखक, या वह काल्पनिक रचना जिसे लेखक कहा जाता है, एक व्यक्तिगत जुनून होता है। याकूब की तरह, जिसने पूरी रात एक रहस्यमय प्राणी से संघर्ष किया, अनुवादक चुपचाप लेखक से तब तक जूझता रहता है जब तक कि वह उसे आशीर्वाद न दे दे या उसे जाने न दे। याकूब की तरह, वह अपने प्रतिद्वंद्वी को जानना चाहता है, उससे आमने-सामने मिलना चाहता है, लेखक के चेहरे, उसके नाम, उसकी शक्ति, उसकी शैली से शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से व्याकुल रहता है। इसलिए मैंने सियोरान से संघर्ष किया, और लंबे समय तक मैंने उसकी कल्पना एक ऐसी आत्मा के रूप में की, जो उसके पाठ की पंक्तियों से किसी जादूगरनी के काढ़े से उत्पन्न हुई हो: एक सिंह जैसा सिर, ज़राथुस्त्रा की आवाज़, नाटकीय मुद्राएँ जो कभी बाइबिल के पैगंबर की तो कभी पश्चिमी शैली के व्यक्ति की होती हैं। सबसे बढ़कर, मैंने उसे बेहद कम उम्र का और विलक्षण प्रतिभा से भरपूर देखा, जिसमें पीड़ा के प्रति एक अजीब लगाव और आत्म-यातना की एक शैतानी प्रवृत्ति थी, एक विद्रोही बच्चा जो गंभीर और क्रूर जीवंतता से भरा था, खतरनाक तरीके से दर्शनशास्त्र का खेल खेल रहा था, जहरीले और घातक विचारों से खिलवाड़ कर रहा था।

लेकिन मेरे सियोरान का एक ऐतिहासिक आयाम है जिसे हाल के अतीत से भी खोजा जा सकता है। वह रोमानिया के राजनीतिक रूप से अशांत अंतरयुद्ध काल का एक युवा बुद्धिजीवी है। यूजीन इओनेस्को, जो एक हास्यास्पद नाटककार और एकेडेमिक फ्रांसेज़ के सदस्य थे, और मिर्सेआ एलियाडे, जो दार्शनिक और धर्मों के इतिहासकार थे, के साथ उन्होंने 1930 के दशक में रोमानिया के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भाग लिया। वह रोमानिया की "युवा पीढ़ी", उसके "क्रोधित युवाओं" में से थे, जो मातेई कैलिनेस्कु के शब्दों में, "एक ऐसी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे जिसका सिद्धांत वृद्धावस्था पर युवावस्था की प्रधानता पर आधारित था - युवावस्था को

आध्यात्मिक उत्साह, प्रामाणिकता, रचनात्मकता, आदर्शवाद के साथ जोड़ा जाता था, जबकि वृद्धावस्था को दिनचर्या, जड़ता, राजनीतिक भ्रष्टाचार और तुच्छ भौतिकवाद का प्रतीक माना जाता था।" जैसा कि कैलिनेस्कु बताते हैं, 1934, जिस वर्ष 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर' पहली बार प्रकाशित हुई थी, रोमानिया में 1930 के दशक के महत्वपूर्ण समयों में से एक था। एलिआडे ने पाँच पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें धार्मिक मानवविज्ञान पर एक अध्ययन भी शामिल है जिसमें द फोर्ज एंड द क्रूसिबल (1962) के मुख्य विचार शामिल हैं, और इओनेस्को ने अपनी एकमात्र प्रमुख रोमानियाई पुस्तक, विखंडनात्मक साहित्यिक आलोचना का एक खंड प्रकाशित किया जिसका शीर्षक नंबर है।

हालांकि सिओरान एलिआडे और इओनेस्को से उम्र में छोटे थे, फिर भी वे कम दिलचस्प नहीं थे। उनके तीव्र व्यक्तित्व ने उनके जीवन के शुरुआती दौर में ही काल्पनिक कहानियों को जन्म दिया। उदाहरण के लिए, कैलिनेस्कु, मिखाइल सेबेस्टियन के 1934 के उपन्यास, 'फॉर टू थाउजेंड इयर्स' के पात्र स्टीफन प्रलिया (नाम से ही प्रलय का आभास होता है) में युवा सिओरान का एक प्रारंभिक चित्रण पाते हैं, जहाँ वे "जितनी जल्दी हो सके बर्बरों के आक्रमण का आह्वान" शीर्षक से एक उत्तेजक निबंध के लेखक हैं। वे "रोमानियाई बुद्धिजीवियों की युवा पीढ़ी की शून्यवाद-प्रलयकारी संवेदनाओं" का प्रतीक हैं।

मेरे लिए काल्पनिक सियोरान को उसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से जोड़ना कठिन था। 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर' में ईसाई धर्म की घोर निंदा करने वाली आवाज़ और 'द फ्लाइट फ्रॉम द क्रॉस' जैसा मार्मिक निबंध लिखने वाले व्यक्ति की छवि, रोमानियाई ऑर्थोडॉक्स पादरी के पुत्र, वास्तविक जीवन के सियोरान की छवि से बिल्कुल मेल नहीं खाती। उनका जन्म ट्रांसिल्वेनिया के पहाड़ी गाँव राइनारी में हुआ था, जो रोमानिया में न केवल अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि कवि ऑक्टेवियन गोगा और ट्रांसिल्वेनिया के प्रबुद्ध ऑर्थोडॉक्स बिशप-विद्वान आंद्रेई अगुना जैसे राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अन्य सांस्कृतिक हस्तियों के जन्मस्थान और अंतिम विश्राम स्थल के रूप में भी जाना जाता है। एक किशोर के रूप में, मैं एक बार सियोरान के गाँव से गुज़रा था। पत्थर से बनी, ऊबड़-खाबड़ सड़कों और प्राचीन किसान घरों वाला वह रमणीय गाँव, मानो समय से परे एक जादुई, पौराणिक स्थल जैसा था। उस जगह पर एक रहस्यमयी समृद्धि छाई हुई थी, जो मनमोहक, गहन और उस सुनहरी चमक की तरह थी जो मैंने उस शांत गर्मी की दोपहर में उसके बगीचों और बागों में बिताई थी। और अब मुझे याद है कि बिशप ^अगुना की समाधि पर दर्शन करने कब्रिस्तान जाते समय मैं सियोरान के पारिवारिक घर के पास से गुज़रा था। यह उससे मेरी पहली अनजाने में हुई मुलाक़ात थी, जो पिछले कुछ वर्षों से मेरी निजी कल्पना का एक जुनून बन चुका है, और जिससे, अपने भाषाई संघर्ष में, मैं याकूब की तरह अपने देवदूत से लिपटा रहा हूँ।

मैं कोई जैकब नहीं हूँ, और सियोरान कोई फ़रिश्ता नहीं, सिवाय शायद शैतान के दल के किसी चालाक सदस्य के। लेकिन जब से मुझे उनके अस्तित्व का पता चला है, उन्हें समझना और पकड़ पाना असंभव रहा है। जब मैं 1960 और 1970 के दशक में रोमानिया में छात्र था, तब वे एक रहस्यमय, लगभग पौराणिक व्यक्तित्व थे। ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व के बारे में सुनने को तो

मिलता था, लेकिन उन्हें पढ़ना नामुमकिन था। उनकी फ्रांसीसी पुस्तकें न तो बिकती थीं और न ही अनुवादित होकर प्रकाशित होती थीं, और उनकी रोमानियाई पुस्तकें तो मानो गायब ही हो गई थीं, अत्यंत दुर्लभ पुस्तकों में से एक। हालाँकि वे युद्ध और कम्युनिस्ट सत्ता पर कब्ज़े से लगभग दस साल पहले ही अपना वतन छोड़ चुके थे, फिर भी वे उतने ही अदृश्य थे जितने कि सबसे अवर्णनीय या अनाम व्यक्ति। जब मैं 1970 के दशक के अंत में अमेरिका आया, तो मैंने पाया कि वे कुलीन बौद्धिक हलकों में अच्छी तरह से जाने जाते थे, हालाँकि वे पहले की तरह ही मायावी और रहस्यमय बने रहे। उनकी रोमानियाई पुस्तकें आज भी सचमुच दुर्लभ हैं, केवल विशेष संग्रहों में ही उपलब्ध हैं। यह पुस्तक सियोरान की उनकी मातृभाषा से अंग्रेजी में पहला अनुवाद है। अंततः, मैंने उसे पकड़ लिया है, और कम से कम एक अनुवाद के लिए - जो कि सबसे अस्थायी कला है - मैंने उसे दूसरों के देखने और पढ़ने के लिए प्रस्तुत कर दिया है। यह सच है कि उसकी रचनाएँ विशिष्ट रुचि की हैं, कई लोगों के लिए बहुत तीखी और कड़वी हैं, और विरोधाभासी रूप से, कुछ अन्य लोगों के लिए बहुत ही काव्यात्मक और हास्यपूर्ण हैं। फिर भी, सार्त्र के अंग्रेजी भाषा में हमेशा से ही बहुत सारे प्रशंसक रहे हैं, और मेरी राय में सियोरान सार्त्र या युद्धोत्तर फ्रांसीसी अस्तित्ववादियों में से किसी से भी बेहतर शुद्ध लेखक हैं। उनकी शैलीगत तीक्ष्णता ने कुछ फ्रांसीसी आलोचकों को उन्हें पॉल वैलेरी के समान श्रेणी में रखने के लिए प्रेरित किया है, जो भाषाई शुद्धता की सर्वोच्च प्रशंसा है। लेकिन उनके अस्तित्ववादी निराशा और हास्य की चौंकाने वाली, स्फूर्तिदायक जीवंतता उनके दार्शनिक गद्य को नीत्शे और कीर्केगार्ड की श्रेणी में रखती है।

जैसे ही मैंने अपने सियोरान की कल्पना करने की कोशिश की, मेरे मन में वह पुराना दिन बार-बार लौट आया जब मैंने पहली बार उसकी अदृश्य उपस्थिति को महसूस किया था, और मैं सोचने लगी कि मैं अपने "शून्यवादी-प्रलयकारी" सियोरान को उन विवरणों से कैसे जोड़ सकती हूँ जो मुझे आज भी अच्छी तरह याद हैं: पहाड़ों की हवा जो सुनहरे, हरे और नीले रंगों से जगमगा रही थी, एक दूरदराज के गाँव में एक सुस्त, भारी, फिर भी सुखद गर्मी के दिन की सुस्ती जहाँ गतिविधि का एकमात्र संकेत घास के पत्तों पर आलसी पक्षियों की भिनभिनाहट थी। और क्या यह मेरा सियोरान ही था जिसे मैंने लगभग छू लिया था, या सिर्फ एक भूत जिसे वह बहुत पहले पीछे छोड़ गया था, जिसका नाम पिछले पच्चीस वर्षों से रोमानिया में दबे स्वर में ही लिया जाता रहा था? अपनी उलझन का जवाब पाने के बजाय, मुझे सियोरान के अपने लेखन में उस स्थान और व्यक्ति के बीच की अटूट असंगति की पुष्टि मिली जिसे मैंने महसूस किया था। द टेम्प्टेशन टू एग्ज़िस्ट (1956) में, वह अपनी उत्पत्ति के बारे में लिखते हैं:

रोमानियाई होने का विरोधाभास एक ऐसी उथल-पुथल है जिसका लाभ उठाना आना चाहिए... अपने लोगों से, अपने देश से, अपनी ही सुस्ती में डूबे और लगभग जड़ता से चूर किसानों से नफरत करते हुए, मुझे उनसे वंशज होने पर शर्म आती थी... उन्हें न तो दरकिनार कर पाने और न ही उनमें जान फूंकने के कारण, मैं उनके विनाश का सपना देखने लगा।

हल्के-फुल्के अंदाज़ में, जब मैं पिछली गर्मियों में पहली बार उनसे मिलने गया था, तो उन्होंने अपने और अपनी जड़ों के बीच इस असंगति की पुष्टि करते हुए, अपने पहले निराशावादी

उपन्यास, 'ऑन द हाइट्स ऑफ़ डेस्पेयर' से उनके सुदूर पैतृक क्षेत्र में मचे बवाल से जुड़ा एक मज़ेदार पारिवारिक किस्सा सुनाया। उनके पिता, जो एक पादरी थे, और उनकी माँ, जो क्रिश्चियन विमेंस लीग की प्रमुख थीं, ने बहुत ही चुपचाप रहकर, हफ़्तों तक घर में बत्तियाँ बंद करके और बहुत जल्दी सोकर इस विवाद को संभाला।

सियोरान की संपूर्ण रचना का पाठक आसानी से उनके काल्पनिक उपन्यासों के निर्माण और विघटन के खेल में उलझ जाता है, क्योंकि वास्तविक जीवन में सियोरान के दो जीवन, दो पहचान और दो लेखन शैली थीं। 1937 में उन्होंने छात्रवृत्ति प्राप्त की और रोमानिया छोड़कर पेरिस चले गए, फिर कभी वापस नहीं लौटे। इसके बाद उन्होंने केवल फ्रेंच में ही लिखा। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, रोमानिया में बौद्धिक हलकों के बाहर सियोरान को बहुत कम लोग जानते हैं, जिन्होंने गुप्त रूप से उनके नाम को जीवित रखा है। 1949 में उनकी पहली फ्रेंच पुस्तक, 'प्रिसिस डे डीकंपोज़िशन' के प्रकाशन के बाद से पश्चिम में उनकी प्रसिद्धि लगातार बढ़ती गई, लेकिन रोमानिया की पच्चीस वर्षों की कम्युनिस्ट सांस्कृतिक नीतियों ने उनके गृह देश में उनके द्वारा छोड़े गए सभी निशानों को मिटा दिया, जहाँ उन्होंने कई रचनाएँ प्रकाशित की थीं। हाल ही में हुई रोमानियाई क्रांति ने सियोरान के पुनरुद्धार का अवसर दिया है, जिसके प्रति सियोरान स्वयं मिश्रित भावनाएँ रखते हैं। प्रिक्स कॉम्बैट के विजेता और "पॉल वैलेरी की मृत्यु के बाद हमारी भाषा को सम्मानित करने वाले सबसे महान फ्रांसीसी लेखक" (सेंट जॉन पर्स) तथा "कीर्केगार्ड, नीत्शे और विटजेनस्टाइन की परंपरा में सबसे विशिष्ट व्यक्ति" (सुसान सोंटाग) के रूप में प्रशंसित होने के बावजूद, सियोरान ने हमेशा प्रसिद्धि से परहेज किया है। वे इसे एक अस्पष्ट आशीर्वाद मानते हैं और गुमनामी को स्वतंत्रता के गारंटर के रूप में पसंद करते हैं, भले ही जिस स्वतंत्रता की वे सबसे अधिक आकांक्षा रखते हों, वह लक्ज़मबर्ग के उद्यानों में निर्गतता से घूमने की स्वतंत्रता हो।

1930 के दशक के रोमानियाई सिओरान, बाद के दशकों के फ्रांसीसी और कहीं अधिक प्रसिद्ध सिओरान से भिन्न होते हुए भी उनसे संबंधित हैं। युवा रोमानियाई सिओरान को पढ़कर, जैसा कि उनके एक अन्य अनुवादक ने कहा है, हम पाते हैं कि “उन्होंने क्या सहेजा है और क्या त्याग दिया है, उनकी युवावस्था का पुराना व्यक्तित्व और फ्रांसीसी भाषा से परिचय के बाद वे जो नए व्यक्तित्व में परिवर्तित हुए।” सिओरान की रचनाओं के विषय आधुनिक और उत्तर-आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के विषय हैं: निराशा और पतन, निरर्थकता और अलगाव, अस्तित्व की निरर्थकता और अतार्किकता, पूर्ण स्पष्टता और आत्म-जागरूकता की आवश्यकता, और चेतना एक पीड़ा के रूप में। सिओरान की पहली प्रकाशित रचना, 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर', उनके बाद के दार्शनिक निबंधों के मुख्य विषयों की झलक देती है और इस आधुनिक दार्शनिक लेखक के विचारों के मूल स्रोत के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

फ्रांसीसी सियोरान, शैमफोर्ट के प्रभाव में नीत्शे का सार प्रस्तुत करते हैं, वे "नैतिकतावादियों के विद्यालय में प्रशिक्षित जॉब" की तरह हैं, एक सुरुचिपूर्ण और व्यंग्यात्मक शैलीकार जिन्होंने अपनी युवावस्था के जोशीले गीतात्मक भाव को नैतिक सूक्तियों से संयमित कर लिया है, क्योंकि वे जानते हैं कि "एक नैतिकतावादी का पहला कर्तव्य अपने गद्य को काव्यमय बनाना है" (ले मौवैस

डेमियर्ज, 135)। इसके विपरीत, मेरे सियोरान, जब वे 1934 में 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर' लिख रहे थे, तब केवल बाईस वर्ष के थे, एक नीत्शे जो अभी भी अपने "ज़राथुस्त्रा, अपने हाव-भाव, अपने रहस्यमय विदूषक के करतब, ऊंचाइयों के पूरे सर्कस" (सिलोजिज्म्स डे आई'अमर्ट्यूम, 44) से परिपूर्ण थे। उनकी उन्मादपूर्ण अभिव्यक्ति, उनकी असफलता की स्वीकारोक्ति, उनकी निराशा और स्पष्ट पीड़ा भी दोस्तोयेव्स्की के भूमिगत व्यक्ति की छवि को प्रतिध्वनित करती है, जिससे सियोरान यूरोप के पूर्वी छोर से आए एक युवा विद्रोही के रूप में प्रकट होते हैं, जो बाल्कन में अपने गुप्त ठिकाने से द्वेषपूर्ण ढंग से आग और गंधक उगलते हैं, सर्वनाश के एक दूरदर्शी, "क्रोध के प्रेमी", निराशा के एक सिद्धांतकार, एक अनियंत्रित जॉब, जैसा कि उन्होंने अपनी अंतिम रोमानियाई पुस्तक, आंसू और संत में चित्रित किया था: "जॉब, [है] ब्रह्मांडीय विलाप और रोते हुए विलो वृक्ष ... प्रकृति और आत्मा के खुले घाव ... और एक मानव हृदय, ईश्वर का खुला घाव।"

एक वास्तविक लेखक का अस्तित्व काल्पनिक कथा लेखन को जटिल बना देता है। जब मैं अपने सियोरान की कल्पना कर रहा था, तब मेरी दिली तमन्ना थी कि मैं वास्तविक सियोरान से मिलूँ, क्योंकि याकूब की तरह मैं भी उनका आशीर्वाद चाहता था, और साथ ही मुझे यह भी लगता था कि जब तक मैं उनसे साक्षात न मिल लूँ, तब तक वे पूर्ण नहीं होंगे। मैं जानता था कि वास्तविक अस्सी वर्षीय सियोरान मेरे युवावस्था के काल्पनिक सियोरान से बहुत अलग होंगे, लेकिन फिर भी मैं छवियों के इस टकराव को एक आवश्यक और संतोषजनक अनुभव के रूप में देखता था, जो सियोरान की रचनाओं में चतुराई से गढ़े गए सभी विरोधाभासों के अनुरूप था। जब भी मैं अपने सियोरान की कल्पना करता, तो मुझे आशा रहती थी कि वास्तविक सियोरान, भले ही लगभग अस्सी वर्ष के हों, एक युवा वृद्ध व्यक्ति होंगे। मेरी यह आशा अधूरी नहीं रही।

पेरिस के उनके साधारण से अपार्टमेंट में, जो उन्होंने लेफ्ट बैंक की एक पुरानी इमारत के अटारी में बड़े ही रचनात्मक ढंग से बनाया था और जहाँ हाल तक कोई लिफ्ट नहीं थी, वे किताबों के विशाल ढेर से बाहर निकले और मुझे एक संकरे गलियारे से होते हुए, जिसकी छत नीची और फर्श समतल नहीं था, एक अप्रत्याशित रूप से धूपदार कमरे में ले गए, जिसकी छत से एक सुंदर बगीचा लटका हुआ था। सियोरान देखने में कमज़ोर लग रहे थे, लेकिन उनका यह रूप भ्रामक था, जैसा कि मुझे तब पता चला जब उन्होंने मुझे बताया कि वे अपनी इमारत की नई लिफ्टों को नज़रअंदाज़ करना पसंद करते हैं, या जब वे तेज़ी से बाहर निकले और मुझे लक्ज़मबर्ग गार्डन में अपनी पसंदीदा सैर पर ले गए। जब वे बात करते थे, तो उनकी घनी भौहों के नीचे से उनकी साफ हरी आँखें चमक उठती थीं, उनकी तीक्ष्ण दृष्टि मुझे कुर्सी पर ही जकड़ लेती थी, जबकि उनका जबड़ा युवा दृढ़ता से आगे की ओर निकला रहता था, और वह बूढ़ा व्यक्ति चमत्कारिक रूप से उस युवा व्यक्ति में बदल जाता था जिसे मैं जानता था, मेरा सियोरान। लेकिन दिलचस्प विरोधाभास बना रहा, क्योंकि वह युवक एक बूढ़े व्यक्ति की तरह बोलता था, और जब मैंने उससे पूछा कि वह क्या लिख रहा है, तो उसने उत्तर दिया कि वह अब नहीं लिखता, क्योंकि "मैं अब ब्रह्मांड की निंदा नहीं करना चाहता; मैंने यह बहुत समय तक किया है, क्या आपको ऐसा नहीं लगता?" हाँ, यह "नया" सियोरान प्रतीत होता था, जो यह दावा कर रहा था कि उसने लेखन

छोड़ दिया है और निंदा करने का उसका सिलसिला समाप्त हो गया है, जो मेरे उस युवा सियोरान से कितना अलग था जिसकी पहली पुस्तक ईशनिंदा से भरी हुई थी। फिर भी, उनकी हास्यपूर्ण और जीवंत बातों को सुनकर - एक "उदासी भरे सूक्तियों के लेखक" से यह एक और विरोधाभास है - मुझे यह महसूस हुए बिना नहीं रह सका कि मैं शायद वास्तविक जीवन के सियोरान से नहीं, बल्कि किसी काल्पनिक पात्र, किसी नए व्यक्तित्व से निपट रहा था, और वह जल्द ही हमें एक बार फिर चौंका देगा, क्योंकि वह नाटकीय प्रभावों का उस्ताद है, जिसे इतालवी लेखक पिएत्रो सिटाटी ने "स्पष्टवादी और शैतानी" और स्पेनिश दार्शनिक फर्नांडो सवाटर ने "अंतिम शौकीन" के रूप में वर्णित किया है।

यदि लेखक का काल्पनिक चित्रण किसी भी पठन अनुभव का हिस्सा है, कल्पना का एक अभ्यास जिसका महत्व पुस्तक के अनुसार बदलता रहता है, तो 'निराशा की ऊंचाइयों पर' को पढ़ते समय यह एक केंद्रीय मुद्दा बन जाता है, जहाँ लेखक जानबूझकर अलंकारिक युक्तियों और नाटकीय हाव-भावों के माध्यम से एक काल्पनिक व्यक्तित्व का निर्माण करता है, ताकि अपने वास्तविक स्वरूप को बचा सके। संकट के क्षण में लिखी गई यह पुस्तक, जब लेखक असहाय और हताश होकर अनिद्रा से ग्रस्त था, आत्महत्या का विकल्प है और उसका इलाज भी प्रस्तुत करती है। इसका शीर्षक उस समय के रोमानियाई समाचार पत्रों में प्रकाशित आत्महत्या सूचनाओं की ओर सीधा संकेत करता है, जो हमेशा एक ही सूत्र से शुरू होती थीं: "निराशा की ऊंचाइयों पर, फलां युवक ने अपनी जान ले ली..." कुछ आडंबरपूर्ण लगने वाला यह वाक्यांश, "निराशा की ऊंचाइयों पर", इस प्रकार सभी आत्महत्याओं के लिए एक प्रकार के सामान्य तर्क के रूप में मान्यता प्राप्त कर गया। इस घिसे-पिटे मुहावरे का व्यंग्यात्मक प्रयोग करते हुए, सियोरान स्वयं को उस भूमिका में ढालते हैं जिसे मैं "युवा बर्बर" या "प्रलय का जानवर" कहूंगा, जो रक्त और आंसुओं से सने चेहरे के साथ, अपने अर्ध-पूर्वी बाल्कन के हृदय से विद्रोह और निराशा की क्रूर चीख निकालते हुए, अस्तित्वगत बेचैनी की खाई पर मंडरा रहा है। इस चरित्र में ढलकर, सियोरान लाक्षणिक रूप से आत्महत्या कर लेते हैं, जबकि अपने गढ़े हुए चरित्र के माध्यम से अपने भीतर उमड़ रही गीतात्मक ऊर्जा की अधिकता को मुक्त करके मृत्यु की पुकार से बच निकलने में सफल होते हैं: "मृत्यु का भयावह अनुभव और जुनून, जब चेतना में संरक्षित रहता है, तो विनाशकारी हो जाता है। यदि आप मृत्यु के बारे में बात करते हैं, तो आप अपने एक हिस्से को बचाते हैं। लेकिन साथ ही, आपके वास्तविक स्व का कुछ हिस्सा मर जाता है, क्योंकि वस्तुनिष्ठ अर्थ चेतना में अपनी वास्तविकता खो देते हैं।"

अपने जुनून से मुक्ति पाने के लिए लिखने की प्रेरणा ने हमेशा सियोरान के काम को प्रेरित किया है। जैसा कि उन्होंने हाल ही में सावाटर के साथ एक साक्षात्कार में कहा, "मेरे लिए लेखन एक प्रकार की चिकित्सा है, इससे अधिक कुछ नहीं।" स्टर्म अंड ड्रैंग काल के युवा गोएथे की तरह, जिन्होंने एक व्यक्तिगत संकट से उबरने के लिए आत्महत्या करने वाले वर्थर का आविष्कार किया था, सियोरान भी अपने व्यथित मन से एक चरित्र का निर्माण करते हैं। लेकिन गोएथे के विपरीत, जिनके लिए वर्थर एक निजी दानव था जिसे उन्होंने "इतनी अच्छी तरह से दूर कर दिया था कि उन्हें बिल्कुल भी पीड़ा नहीं हुई," एक ऐसे "स्पष्ट" और "उदात्त या घृणित रहस्यों" से रहित

करियर में एक मात्र दुर्घटना, जो "निराशाजनक" है, सियोरान, जो स्वीकार करते हैं कि उनके पास "गोएथे के लिए कोई भावना नहीं है" (सिलोजिज्म्स डे आई'अमेरटुमे, 22), अपने भाग्य को उस पीड़ित से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ देखते हैं जो पहली बार निराशा की ऊंचाइयों पर जीवित होता है।

मुझे ज्ञानी पुरुष इसलिए नापसंद हैं क्योंकि वे आलसी, कायर और संशयवादी होते हैं... असीम चिंता से ग्रस्त व्यक्ति कहीं अधिक जटिल होता है। ज्ञानी पुरुष का जीवन निरर्थक और खाली होता है, क्योंकि वह विरोधाभास और निराशा से मुक्त होता है। विरोधाभासों से भरा जीवन कहीं अधिक समृद्ध और रचनात्मक होता है।

निराशा की ऊंचाइयों पर लिखी गई यह रोमांटिक संकटकालीन कविता गद्य में लिखी गई है, जिसका मुख्य विषय स्वयं से, ईश्वर से और ब्रह्मांड से जूझता हुआ व्यक्ति है। कुछ अध्यायों के शीर्षकों से ही व्यक्ति के व्यक्तिगत जुनून, झुकाव और सनक स्पष्ट हो जाते हैं: "बेतुकेपन का जुनून," "अनिद्रा का आशीर्वाद," "थकान और पीड़ा," "पागलपन की पूर्वसूचना," "मृत्यु पर," "उदासी पर," "कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है," "पूर्ण असंतोष।"

“दुख का एकाधिकार,” “अब और पुरुष नहीं रहना,” “मनुष्य, अनिद्रा का शिकार जानवर,” “काम के माध्यम से अपमान,” “क्रॉस से पलायन,” “पूर्ण गीतात्मकता,” “बकवास।”

हालांकि यह कविता नहीं है, फिर भी 'निराशा की ऊंचाइयों पर' एक अत्यंत गीतात्मक रचना है, एक "स्वयं का गीत" जिसमें स्वीकारोक्ति का भाव एक दार्शनिक चिंतन में बदल जाता है और जहां मृत्यु, ईश्वर, अनंतता, समय, शाश्वतता, इतिहास, सत्य, अच्छाई और बुराई जैसे महान दार्शनिक विषय अब अमूर्त नहीं रह जाते बल्कि एक जैविक वास्तविकता, एक जीवंत अर्थ प्राप्त कर लेते हैं।

कुछ अनुभव और जुनून ऐसे होते हैं जिनके साथ जीना असंभव है। तो क्या उन्हें स्वीकार करना ही मुक्ति नहीं है? ... काव्यात्मक होने का अर्थ है कि आप स्वयं में सिमटकर नहीं रह सकते। अभिव्यक्ति की आवश्यकता उतनी ही तीव्र होती है, जितना अधिक काव्यात्मकता आंतरिक, गहन और केंद्रित होती है... सबसे गहरे आत्मिक अनुभव ही सबसे सार्वभौमिक होते हैं, क्योंकि उनके माध्यम से ही व्यक्ति जीवन के मूल स्रोत तक पहुँचता है।

यह गीत, जो आंशिक रूप से हृदय की पुकार और आंशिक रूप से चिंतनशील मनन है, एक वास्तविक शारीरिक पीड़ा - अनिद्रा - और उससे उत्पन्न निराशा के संकट से उपजा है। जब सियोरान लिखते हैं कि "पीड़ा का गीत रक्त, मांस और नसों का गीत है," तो वे हमें इस पुस्तक के साथ-साथ बाद की रचनाओं (उनकी अधिक संयमित गीतात्मक अभिव्यक्ति के बावजूद) में भी अपने लेखन की एक बुनियादी परिभाषा देते हैं: एक ऐसा लेखन जिसमें आँसू विचारों में बदल जाते हैं। सियोरान के लिए लेखन और दर्शन पीड़ा से जैविक रूप से जुड़े हुए हैं। 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर' में एक निरंतर चलने वाला विषय यह है कि बीमारी और पीड़ा में "गीतात्मक गुण" होते हैं जो अकेले "आध्यात्मिक रहस्योद्घाटन" की ओर ले जाते हैं। "पीड़ित होना ज्ञान उत्पन्न करना है," वे बाद में 'ले मौवैस डेमियर्ज' में लिखेंगे। उनका जीवन और उनका कार्य आँसुओं का रूपांतरण है: "वे आपसे तथ्य, प्रमाण, कार्य पूछते हैं, और आप उन्हें केवल रूपांतरित आँसू ही

दिखा सकते हैं" (ले मौवैस डेमियर्ज, 131)।

गीतात्मक अवस्था को "रूपों और प्रणालियों से परे" मानते हुए, सियोरान का लेखन विचित्र और निराकार है। उनकी पुस्तक के अध्याय उनके गीतात्मक उन्माद के चार्ट की तरह हैं, जो उनके गहन आंतरिक जीवन के उतार-चढ़ाव को दर्शाते हैं और उनकी "आत्मनिष्ठा के फैलाव" के मार्ग को निष्ठापूर्वक चित्रित करते हैं। ये अध्याय लंबाई और लहजे दोनों में असमान हैं। दार्शनिक विषयों पर लंबे चिंतन के बीच-बीच में संक्षिप्त गीतात्मक विस्फोट आते हैं, जो इतने दोहराव वाले होते हैं कि जुनूनी लगने लगते हैं, और अक्सर हास्यपूर्ण और विनोदी भी होते हैं, भले ही मुख्य भाव निराशा का हो। अन्य समयों पर, विशेष रूप से पुस्तक के दूसरे भाग में, वे सूक्ति और विरोधाभास की ओर अधिक झुकाव रखते हैं, जो उनके बाद के लेखन की विशेषता है। पुस्तक की शैली, जो कभी गीतात्मक तो कभी व्यंग्यात्मक, कभी काव्यात्मक तो कभी विरोधाभासी है, शुष्क दार्शनिक तर्क की तकनीक को नकारते हुए विचारोत्तेजक और सजीव बिम्बों का सहारा लेती है, और दार्शनिक के मन की बौद्धिक और आध्यात्मिक पीड़ा को चंचल लेकिन आकर्षक तरीकों से प्रकट करती है, जो बाद में सियोरान की सुरुचिपूर्ण शैली और गहन रूप से महसूस किए गए विचारों के अनूठे संयोजन की झलक देती है।

इस प्रकार का “विकृत” लेखन जानबूझकर “सभ्य” लेखन की पूरी परंपरा के विरुद्ध खड़ा होता है और मृत्यु, पीड़ा और अराजकता पर ज़ोर देते हुए स्वयं को सौंदर्यशास्त्र के दायरे से बाहर रखता है: “रूपों और ढाँचों की परिष्कृत संस्कृति की तुलना में, जो सब कुछ छुपा देती है, गीतात्मक शैली अपनी अभिव्यक्ति में पूरी तरह बर्बर है। इसका मूल्य ठीक इसके जंगलीपन में निहित है: यह केवल रक्त, ईमानदारी और अग्नि है।” कठोर संस्कृतियों के परिष्कार के प्रति युवा बर्बर का भय एक ऐसा विषय है जो सियोरान द्वारा ‘द टेम्प्टेशन टू एग्ज़िस्ट’ में फ्रांसीसियों के चित्रण में पुनः प्रकट होगा। लेकिन सियोरान के दर्शन का एक अन्य, अधिक मौलिक पहलू यहाँ “पूर्ण गीतात्मकता” के संसाधनों में उनके विश्वास की अभिव्यक्ति में मौजूद है, अर्थात् एक विचारक के रूप में उनकी स्पष्टता जो सभी दार्शनिक प्रणालियों के खोखलेपन को खोजती है और निर्दयतापूर्वक उजागर करती है।

निराशा की ऊँचाइयों पर एक नाटक है जो पीड़ित, समस्याग्रस्त मनुष्य, अर्थात् सियोरान के पीड़ित, जैविक और गीतात्मक विचारक, और उसके कट्टर शत्रु, दार्शनिक या ऋषि, अमूर्त मनुष्य के बीच खेला जाता है। यह अंतर नीत्शे के डायोनिसियन और सुकरात के मनुष्य की याद दिलाता है। इस प्रकार सियोरान लिखते हैं कि "विचार के आनंद के लिए सोचने वाले अमूर्त मनुष्य की छाया से जैविक मनुष्य का उदय होता है, जो एक महत्वपूर्ण असंतुलन के कारण सोचता है, और जो विज्ञान और कला से परे है।" जैविक या गीतात्मक विचारक वह मनुष्य है जो अपने आँसुओं को विचारों में बदल देता है और जिसके विचार जुनून होते हैं। यहाँ उसका स्वीकारोक्ति है: "मुझे ऐसे विचार पसंद हैं जिनमें मांस और रक्त की एक झलक हो, और मैं एक खोखले अमूर्तता की तुलना में यौन तनाव या तंत्रिका अवसाद से उत्पन्न विचार को हज़ार गुना अधिक पसंद करता हूँ।" घोर निराशा के चंगुल में, उस चरम स्पष्टता की अवस्था में जो "परमानंद के नकारात्मक समकक्ष" है, गीतात्मक विचारक अमूर्त मनुष्य के बौद्धिक आशावाद को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार

करता है।

निराशा वह अवस्था है जिसमें चिंता और बेचैनी अस्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती है। निराशा में डूबा कोई भी व्यक्ति "समस्याओं" से पीड़ित नहीं होता, बल्कि अपने भीतर की पीड़ा और अग्नि से ग्रस्त होता है। यह दुख की बात है कि इस संसार में किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। फिर भी, न तो कभी कोई ऐसा व्यक्ति था और न ही कभी होगा जो इस कारण आत्महत्या करे। बौद्धिक चिंता का हमारे अस्तित्व की समग्र चिंता पर कितना गहरा प्रभाव होता है! इसीलिए मैं बौद्धिक जीवन की तुलना में नाटकीय जीवन को पसंद करता हूँ, जो आंतरिक अग्नि से प्रज्वलित होता है और नियति के झंझराहट से भरा होता है, जबकि बौद्धिक जीवन अमूर्त विचारों में उलझा रहता है और हमारी आत्मनिष्ठा के सार को नहीं छूता। अमूर्त चिंतन में जोखिम, पागलपन और जुनून की कमी मुझे धिक्कारती है। जीवंत, भावुक चिंतन कितना उर्वर होता है! गीतात्मकता इसे उसी प्रकार पोषित करती है जैसे हृदय में रक्त का संचार होता है!

नीत्शे ने अपनी रचना 'द बर्थ ऑफ ट्रेजेडी' में प्लेटो के उस आदर्श की आलोचना की है जिसमें सुकरात को मृत्यु के भय से मुक्त करने वाले व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जिसे ज्ञान और तर्क ने मृत्यु के भय से मुक्त कर दिया है। इस आदर्श का अनुसरण करने वाले अंततः पाते हैं कि "तर्क विज्ञान की सीमाओं पर आकर उलझ जाता है और अंततः अपनी ही पूंछ काट लेता है," जिसके बाद "एक नए प्रकार की अंतर्दृष्टि प्रकट होती है, एक दुखद अंतर्दृष्टि।" इसी प्रकार, सियोरान उन लोगों पर हमला करते हैं जो कृत्रिम तर्क के माध्यम से मृत्यु के भय को समाप्त करने का प्रयास करते हैं... क्योंकि अमूर्त संरचनाओं के माध्यम से एक वास्तविक भय को समाप्त करना बिल्कुल असंभव है। सियोरान के अनुसार, दार्शनिक द्वारा एक प्रणाली स्थापित करने का प्रयास न केवल असंभव है, बल्कि निष्फल भी है, क्योंकि वास्तविक मानवीय रचनात्मकता का स्रोत पीड़ा, रक्त, आँसू और मृत्यु की वेदना में ही निहित है। "सभी महत्वपूर्ण चीजों पर मृत्यु का चिन्ह होता है।"

क्या लोगों को अभी तक यह समझ नहीं आया है कि सतही बौद्धिक खेलों का समय समाप्त हो गया है, कि पीड़ा तर्क-वितर्क से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, कि निराशा की चीख सबसे सूक्ष्म विचार से भी अधिक खुलासा करने वाली होती है, और कि आँसुओं की जड़ें हमेशा मुस्कान से कहीं अधिक गहरी होती हैं?

इसी भावना के साथ, एक ऐसा दृष्टिकोण जो उनकी बाद की रचनाओं में भी झलकता है (Valéry face à ses idoles), सियोरान उन दार्शनिक प्रणालियों को खारिज करते हैं जो केवल गहन को अभिव्यक्त करने योग्य बनाने में ही सफल होती हैं:

जो लोग प्रेरणा के आवेश में लिखते हैं, जिनके लिए विचार उनकी स्वाभाविक तंत्रिका प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है, वे एकता और व्यवस्थाओं की परवाह नहीं करते। ऐसी चिंताएँ, विरोधाभास और सतही विसंगतियाँ एक दरिद्र और नीरस व्यक्तिगत जीवन का संकेत देती हैं। केवल महान और खतरनाक विरोधाभास ही एक समृद्ध आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक हैं, क्योंकि केवल वे ही जीवन के प्रचुर आंतरिक प्रवाह की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

सावाटर, सियोरान के दार्शनिक विमर्श को "अध्यापन विरोधी" कहते हैं। यह प्रमुख दार्शनिक

विषयों पर चर्चा तो करता है, लेकिन जानबूझकर एक सूचनात्मक और रचनात्मक विमर्श का रूप लेने से बचता है। यह विषय पर कुछ भी "नया" प्रस्तुत करने की आकांक्षा नहीं रखता, इस प्रकार मौलिकता के सभी झूठे दावों का त्याग करता है। "यह भयानक और असंभव के अलावा किसी और चीज़ की अनुशंसा नहीं करता, और वह भी केवल व्यंग्यात्मक रूप से।" सियोरान यह कहते-कहते कभी नहीं थकते कि वे किसी चीज़ में विश्वास नहीं करते। उनका "विनाशकारी" विमर्श, पारंपरिक दार्शनिक अभ्यास के विपरीत, किसी भी दार्शनिक प्रणाली में निहित विरोधाभासों को उजागर करने का निरंतर प्रयास करता है और सभी विपरीतताओं को बड़े चाव से बढ़ावा देता है, उन्हें समान मूल्य और समान रूप से कम महत्व प्रदान करता है।

सब कुछ संभव है, और फिर भी कुछ भी नहीं। सब कुछ जायज़ है, और फिर भी कुछ भी नहीं। हम चाहे जिस रास्ते पर चलें, कोई भी रास्ता दूसरे से बेहतर नहीं है... हर चीज़ की कोई न कोई व्याख्या है, और फिर भी कोई व्याख्या नहीं है। सब कुछ वास्तविक और अवास्तविक, सामान्य और बेतुका, शानदार और नीरस दोनों है। कोई भी चीज़ किसी दूसरी चीज़ से ज़्यादा मूल्यवान नहीं है, न ही कोई विचार दूसरे से बेहतर है... हर लाभ हानि है, और हर हानि लाभ है। हमेशा एक निश्चित दृष्टिकोण, स्पष्ट विचार, सार्थक शब्दों की अपेक्षा क्यों करें? मुझे ऐसा लगता है जैसे मुझसे पूछे गए या न पूछे गए सभी सवालों के जवाब में मुझे आग उगलनी चाहिए।

सिलोगिज्म्स डे आई'अमेरटुमे में, सियोरान एक छोटी सी कहानी सुनाते हुए बताते हैं कि कैसे एक युवा और महत्वाकांक्षी दर्शनशास्त्र के छात्र के रूप में, वे एक अत्यंत मौलिक विषय पर शोध प्रबंध लिखना चाहते थे और अपने प्रोफेसर की नाराज़गी के बावजूद, उन्होंने "आंसुओं का एक सामान्य सिद्धांत" चुना। संभवतः "ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर" इसी प्रस्तावित "आंसुओं के सिद्धांत" के स्थान पर लिखा गया था। इसे साहित्य और कला के लिए किंग कैरोल द्वितीय फाउंडेशन का पुरस्कार मिला। मेरे युवा सियोरान एक ऐसे दार्शनिक थे जो अमूर्त और व्यवस्थित रूप से दर्शनशास्त्र का अध्ययन नहीं कर सकते थे या नहीं करना चाहते थे, और जो एक नाटकीय बदलाव के बाद, जिसका विस्तृत विवरण "ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर" में मिलता है, एक कवि बन गए। एक कवि के रूप में, उन्होंने काव्यात्मक रूप से दर्शनशास्त्र का अध्ययन जारी रखा।

पाठ पर टिप्पणी

इस अनुवाद का उद्देश्य सियोरान की मूल रोमानियाई भाषा की गीतात्मक और विलक्षण भावना को पकड़ पाना है, न कि शब्दशः अनुवाद करना। मुख्य रूप से, इसका अर्थ है सियोरान की युवावस्था की गद्य शैली को संक्षिप्त करना, विशेष रूप से वे अंश जो अंग्रेजी में अलंकृत या दोहराव वाले लगते हैं। ये सभी काट-छांट, परिवर्तन और संशोधन लेखक द्वारा किए गए हैं या उनकी स्वीकृति से किए गए हैं। लेखक ने वैचारिक रूप से दोहराव वाले अतिरिक्त अंशों और अनुभागों को भी हटा दिया है।

उद्धृत कार्य

कैलिनेस्कु, मातेई। “मिहाइल सेबेस्टियन की ‘फॉर टू थाउजेंड इयर्स’ (1934) पर विचार: पठन, कथा साहित्य, इतिहास।” सैलमागंडी में प्रकाशित होने वाला, 1992। सियोरान, ई. एम. ‘डेस लार्म्स एट डेस सेंट्स’, अनुवादक: सांडा स्टोलोजन। पेरिस: ल’हर्न, 1986।

— द बैड डेमियर्ज। पेरिस: गैलिमार्ड, 1969।

— कड़वाहट के तर्कशास्त्र। पेरिस: गैलिमार्ड, 1952।

— अस्तित्व की लालसा। पेरिस: गैलिमार्ड, 1952।

नीत्शे, फ्रेडरिक। “त्रासदी का जन्म।” द बर्थ ऑफ ट्रेजेडी एंड द केस ऑफ वैगनर में, संपादक वाल्टर कॉफमैन। न्यूयॉर्क: विंटेज, 1967।

सैवेटर, फर्नांडो। सिओरन पर निबंध. मैड्रिड: टॉरस, 1974.

- "द लास्ट डेंडी।" एल पेस, 25 अक्टूबर 1990।

- इलिंका ज़रीफ़ोपोल-जॉनस्टन -

गीतात्मक होने पर

हम अपने भीतर ही क्यों सिमट कर नहीं रह सकते? हम अभिव्यक्ति और रूप के पीछे क्यों भागते हैं, अपने अनमोल विचारों या "अर्थों" को प्रकट करने की कोशिश में क्यों लगे रहते हैं, उस विद्रोही और अराजक प्रक्रिया को व्यवस्थित करने के लिए बेताब क्यों रहते हैं? क्या यह अधिक रचनात्मक नहीं होगा कि हम अपनी आंतरिक तरलता के प्रति बिना किसी वस्तुनिष्ठ इरादे के समर्पण कर दें, अपने भीतर की उथल-पुथल और संघर्ष में गहराई से डूब जाएं? तब हम आध्यात्मिक अनुभव के संपूर्ण आंतरिक विकास को कहीं अधिक गहनता से महसूस कर पाएंगे। हर तरह की अंतर्दृष्टि एक उपजाऊ उमंग में घुलमिलकर फले-फूलेगी। वास्तविकता और आध्यात्मिक सार का एक अहसास जन्म लेगा, जैसे किसी लहर का उदय या संगीत की कोई धुन। स्वयं से परिपूर्ण होना, अभिमान के अर्थ में नहीं, बल्कि समृद्धि के अर्थ में, आंतरिक अनंतता की अनुभूति से व्याकुल होना, इसका अर्थ है इतनी तीव्रता से जीना कि ऐसा लगे कि हम जीवन से मरने वाले हैं। ऐसा अहसास इतना दुर्लभ और विचित्र है कि हम इसे चीख-चीखकर व्यक्त करेंगे। मुझे लगता है कि मैं जीवन से मर सकता हूँ, और मैं खुद से पूछता हूँ कि क्या इसका कोई स्पष्टीकरण खोजना व्यर्थ है। जब आपका संपूर्ण आध्यात्मिक अतीत आपके भीतर एक चरम तनाव के साथ स्पंदित होता है, जब पूर्ण उपस्थिति का बोध दबे हुए अनुभवों को पुनर्जीवित करता है और आप अपनी सामान्य लय खो देते हैं, तब जीवन की ऊँचाइयों से मृत्यु आपको बिना उस भय के घेर लेती है जो सामान्यतः इसके साथ होता है। यह कुछ वैसा ही अनुभव है जैसा सुख की ऊँचाइयों पर पहुँचे प्रेमी-प्रेमिकाओं को मृत्यु का क्षणिक लेकिन तीव्र आभास होता है या जब विश्वासघात की पूर्वसूचना उनके नवविकसित प्रेम को सताती है।

कुछ ही लोग ऐसे अनुभवों को अंत तक सहन कर पाते हैं। किसी ऐसी चीज़ को दबाना जिसमें वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता हो, विस्फोटक ऊर्जा को कैद करना, हमेशा एक गंभीर खतरा होता है, क्योंकि एक ऐसा क्षण आता है जब कोई ऐसी प्रचंड शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पाता। और फिर पतन अति परिपूर्णता के कारण होता है। कुछ अनुभव और जुनून ऐसे होते हैं जिनके साथ जीना असंभव है। मुक्ति उन्हें स्वीकार करने में निहित है। मृत्यु का भयावह अनुभव, जब चेतना में संरक्षित रहता है, तो विनाशकारी हो जाता है। यदि आप मृत्यु के बारे में बात करते हैं, तो आप अपने आप का एक हिस्सा बचा लेते हैं। लेकिन साथ ही, आपके वास्तविक स्व का कुछ हिस्सा मर जाता है, क्योंकि वस्तुनिष्ठ अर्थ चेतना में अपनी वास्तविकता खो देते हैं। यही कारण है कि गीतात्मकता व्यक्तिपरकता का फैलाव दर्शाती है; यह एक व्यक्ति की आध्यात्मिक उमंग की एक निश्चित मात्रा है जिसे समाहित नहीं किया जा सकता और जिसे निरंतर अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। गीतात्मक होने का अर्थ है कि आप अपने भीतर बंद नहीं रह सकते। बाहरी अभिव्यक्ति की आवश्यकता उतनी ही तीव्र होती है, जितना अधिक गीतात्मकता आंतरिक, गहन और केंद्रित होती है। दुख भोगने वाला या प्रेम करने वाला व्यक्ति गीतात्मक क्यों होता है? क्योंकि ऐसी अवस्थाएँ, यद्यपि प्रकृति और अभिविन्यास में भिन्न होती हैं, हमारे अस्तित्व के सबसे गहरे और अंतरंग भाग से, व्यक्तिपरकता के सारगर्भित केंद्र से, एक विकिरण क्षेत्र की तरह उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति तब गीतमय हो उठता है जब उसका जीवन एक आवश्यक लय में

धड़कता है और अनुभव इतना तीव्र होता है कि वह उसके व्यक्तित्व के संपूर्ण अर्थ को संश्लेषित कर देता है। तब हमारे भीतर जो अद्वितीय और विशिष्ट है, वह इतने अभिव्यंजक रूप में साकार होता है कि व्यक्ति एक सार्वभौमिक स्तर पर पहुँच जाता है। सबसे गहरे व्यक्तिपरक अनुभव भी सबसे सार्वभौमिक होते हैं, क्योंकि उनके माध्यम से व्यक्ति जीवन के मूल स्रोत तक पहुँचता है। सच्चा अंतर्बोध एक ऐसी सार्वभौमिकता की ओर ले जाता है जो परिधि पर रहने वालों के लिए अगम्य है। सार्वभौमिकता की सामान्य व्याख्या इसे गुणात्मक रूप से समृद्ध समाहितता के बजाय मात्रात्मक विस्तार की घटना कहती है। ऐसी व्याख्या गीतमयता को एक परिधीय और निम्नतर घटना, आध्यात्मिक असंगति का उत्पाद मानती है, यह अनदेखा करते हुए कि व्यक्तिपरकता के गीतमय संसाधन उल्लेखनीय ताजगी और गहराई दर्शाते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो अपने जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों में ही गीतमय हो उठते हैं; कुछ लोग मृत्यु के अंतिम क्षणों में ही काव्यात्मक हो उठते हैं, जब उनका पूरा अतीत अचानक उनके सामने प्रकट हो जाता है और झरने की तरह उन पर प्रहार करता है। कई लोग किसी निर्णायक और गंभीर अनुभव के बाद काव्यात्मक हो जाते हैं, जब उनके अंतर्मन की उथल-पुथल चरम पर पहुँच जाती है। इस प्रकार, जो लोग सामान्यतः वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता की ओर झुकाव रखते हैं, स्वयं से और वास्तविकता से अजनबी होते हैं, प्रेम के बंधन में बंधने पर, ऐसी भावनाओं का अनुभव करते हैं जो उनके सभी व्यक्तिगत संसाधनों को साकार कर देती हैं। यह तथ्य कि लगभग हर कोई प्रेम में कविता लिखता है, यह सिद्ध करता है कि वैचारिक चिंतन के संसाधन उनकी आंतरिक अनंतता को व्यक्त करने के लिए अपर्याप्त हैं; आंतरिक काव्यात्मकता को पर्याप्त वस्तुनिष्ठता केवल तरल, अतार्किक सामग्री के माध्यम से ही प्राप्त होती है। पीड़ा का अनुभव भी इसी प्रकार का है। आपको कभी संदेह नहीं हुआ कि आपके भीतर और दुनिया में क्या छिपा है, आप चीजों के बाहरी किनारों पर संतुष्ट जीवन जी रहे थे, जब अचानक मृत्यु के बाद पीड़ा की वे भावनाएँ आपको जकड़ लेती हैं और आपको अनंत जटिलता के क्षेत्र में ले जाती हैं, जहाँ आपकी आत्मनिष्ठा एक भंवर में उलझ जाती है। दुःख से गीतमय होना उस आंतरिक शुद्धि को प्राप्त करना है जिसमें घाव केवल बाहरी अभिव्यक्तियाँ नहीं रह जाते, बल्कि आपके अस्तित्व के सार में समाहित हो जाते हैं। दुःख का गीतमय भाव रक्त, शरीर और नसों का गीत है। सच्चा दुःख रोग से शुरू होता है। लगभग सभी रोगों में गीतमय गुण होते हैं। केवल वे लोग जो घोर संवेदनहीनता में लिप्त रहते हैं, बीमारी के दौरान अवैयक्तिक बने रहते हैं और इस प्रकार रोग से उत्पन्न व्यक्तित्व के उस गहन विकास से वंचित रह जाते हैं। पूर्ण शारीरिक पीड़ा के बाद ही व्यक्ति गीतमय हो पाता है। आकस्मिक गीतमय भाव का स्रोत बाहरी कारक होते हैं; एक बार जब वे लुप्त हो जाते हैं, तो उनका आंतरिक प्रतिरूप भी लुप्त हो जाता है। आंतरिक उन्माद के अंश के बिना कोई प्रामाणिक गीतमय भाव नहीं होता। यह महत्वपूर्ण है कि सभी मानसिक मनोविकारों की शुरुआत एक गीतमय अवस्था से होती है जिसके दौरान सभी सामान्य अवरोध और सीमाएँ लुप्त हो जाती हैं, और एक अत्यंत उर्वर, रचनात्मक प्रकार के आंतरिक उन्माद को जन्म देती हैं। यह मनोविकारों के प्रारंभिक चरणों की विशेषता काव्यात्मक उत्पादकता की व्याख्या करता है। परिणामस्वरूप, उन्माद को गीतमय भाव के एक प्रकार के तीव्र आवेग के रूप में देखा जा सकता है। इसीलिए हमें मूर्खता की प्रशंसा

करने के बजाय गीतात्मकता की प्रशंसा करनी चाहिए। गीतात्मक अवस्था रूपों और प्रणालियों से परे की अवस्था है। एक अचानक प्रवाह हमारे आंतरिक जीवन के सभी तत्वों को एक झटके में पिघला देता है और एक पूर्ण और तीव्र लय, एक आदर्श अभिसरण का सृजन करता है। कठोर रूपों और ढाँचों की परिष्कृत संस्कृति की तुलना में, जो सब कुछ छुपा देती है, गीतात्मक शैली अपनी अभिव्यक्ति में पूरी तरह से बर्बर है। इसका मूल्य इसकी जंगली गुणवत्ता में ही निहित है: यह केवल रक्त, ईमानदारी और अग्नि है।

सब कुछ कितना दूर है!

मुझे समझ नहीं आता कि हमें इस दुनिया में क्यों जीना चाहिए, क्यों दोस्त बनाने चाहिए, आकांक्षाएं रखनी चाहिए, उम्मीदें और सपने देखने चाहिए। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम दुनिया के किसी दूरदराज कोने में चले जाएं, जहां का शोर और उलझनें सुनाई न दें? तब हम संस्कृति और महत्वाकांक्षाओं का त्याग कर सकते हैं; हम सब कुछ खो देंगे और कुछ भी हासिल नहीं करेंगे; आखिर इस दुनिया से क्या हासिल करना है? कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए लाभ मायने नहीं रखता, जो बेहद दुखी और अकेले हैं। हम एक-दूसरे से इतने कटे हुए हैं! और फिर भी, अगर हम एक-दूसरे के प्रति पूरी तरह से खुले हों, अपनी आत्मा की गहराई में झांकें, तो हम अपने भाग्य का कितना हिस्सा देख पाएंगे? हम जीवन में इतने अकेले हैं कि हमें खुद से पूछना चाहिए कि क्या मरने का अकेलापन हमारे मानवीय अस्तित्व का प्रतीक नहीं है? क्या अंतिम क्षण में कोई सांत्वना हो सकती है? समाज में जीने और मरने की यह इच्छा एक बड़ी कमी का संकेत है। अकेले और एकांत में कहीं मरना हज़ार गुना बेहतर है ताकि आप बिना किसी नाटकीयता के, किसी की नज़र से दूर, मर सकें। मुझे ऐसे लोग नापसंद हैं जो मृत्युशय्या पर खुद को वश में करने का दिखावा करते हैं और दूसरों को प्रभावित करने के लिए बनावटी बातें करते हैं। आँसू अकेलेपन में ही जलते हैं। जो लोग मरते समय मित्रों से घिरे रहने की इच्छा रखते हैं, वे ऐसा डर और अकेले अपने अंतिम क्षणों को जीने की असमर्थता के कारण करते हैं। वे मृत्यु के क्षण में ही मृत्यु को भूल जाना चाहते हैं। उनमें असीम साहस की कमी होती है। वे अपने दरवाजे बंद करके उन पीड़ादायक अनुभूतियों को स्पष्टता और असीम भय के साथ क्यों नहीं सह लेते?

हम हर चीज़ से इतने अलग-थलग हो गए हैं! लेकिन क्या हर चीज़ हमारे लिए समान रूप से दुर्गम नहीं है? सबसे गहरी और स्वाभाविक मृत्यु एकांत में होने वाली मृत्यु है, जब प्रकाश भी मृत्यु का एक सिद्धांत बन जाता है। ऐसे क्षणों में आप जीवन से, प्रेम से, मुस्कान से, मित्रों से और यहाँ तक कि मृत्यु से भी विमुख हो जाएँगे। और आप स्वयं से पूछेंगे कि क्या संसार की शून्यता और आपकी स्वयं की शून्यता के सिवा कुछ और भी है?

जीने की इच्छा न होने पर

कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जिन्हें सहन करना असंभव होता है, जिनके बाद व्यक्ति को लगता है कि जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया है। जीवन की सीमाओं तक पहुँचने पर, उन खतरनाक किनारों पर मिलने वाले हर अनुभव को जी लेने के बाद, रोजमर्रा के हाव-भाव और सामान्य आकांक्षाएँ अपना आकर्षण खो देती हैं। यदि आप जीना जारी रखते हैं, तो केवल अपनी वस्तुनिष्ठता की क्षमता के बल पर, लेखन के माध्यम से अनंत तनाव से स्वयं को मुक्त करने की अपनी योग्यता के बल पर ही ऐसा कर पाते हैं। रचनात्मकता मृत्यु के चंगुल से एक अस्थायी मुक्ति है।

मुझे ऐसा लगता है कि जीवन के सारे सुखों और मृत्यु के निकट आने के कारण मैं अंदर से फट रहा हूँ। मुझे लगता है कि मैं अकेलेपन, प्रेम, निराशा, घृणा, इस संसार की हर चीज़ से मर रहा हूँ। हर अनुभव के साथ मैं एक गुब्बारे की तरह फूलता जाता हूँ जो अपनी क्षमता से अधिक फुलाया गया हो। सबसे भयानक तीव्रता भी शून्यता में विलीन हो जाती है। आप भीतर से बढ़ते हैं, आप तब तक बेतहाशा फैलते हैं जब तक कोई सीमा नहीं रह जाती, आप प्रकाश के किनारे तक पहुँच जाते हैं, जहाँ प्रकाश रात द्वारा छीन लिया जाता है, और उस परिपूर्णता से एक भयंकर बवंडर की तरह आप सीधे शून्यता में गिर जाते हैं। जीवन परिपूर्णता और शून्यता, उमंग और अवसाद दोनों को जन्म देता है। जब हम उस आंतरिक भंवर का सामना करते हैं जो हमें निरर्थकता में निगल जाता है, तो हम क्या होते हैं? मुझे लगता है कि अत्यधिक तीव्रता, अत्यधिक असंतुलन के कारण मेरा जीवन मेरे भीतर टूट रहा है। यह एक ऐसे विस्फोट की तरह है जिसे रोका नहीं जा सकता, जो आपको बाकी सब चीजों के साथ हवा में उछाल देता है। जीवन के अंतिम पड़ाव पर आपको यह अहसास होता है कि आप अपने भीतर के जीवन के स्वामी नहीं रहे, कि आत्मनिष्ठा एक भ्रम है, और आपके भीतर अनियंत्रित शक्तियाँ उबल रही हैं, जो किसी व्यक्तिगत केंद्र या निश्चित लय से परे विकसित हो रही हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव पर सब कुछ मृत्यु का अवसर बन जाता है। आप हर उस चीज़ के कारण मरते हैं जो है और जो नहीं है। इस स्थिति में हर अनुभव शून्यता की ओर एक छलांग है। जब आप जीवन द्वारा दिए गए हर अनुभव को चरम तीव्रता तक जी चुके होते हैं, तो आप उस अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ आप अब कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि कुछ भी शेष नहीं रहता। भले ही आपने इन अनुभवों की सभी संभावनाओं को समाप्त न किया हो, मुख्य अनुभवों को उनकी सीमा तक जीना ही पर्याप्त है। और जब आपको लगता है कि आप अकेलेपन, निराशा या प्रेम से मर रहे हैं, तो वह सब कुछ जो आपने अनुभव नहीं किया है, इस अंतहीन दुखद जुलूस में शामिल हो जाता है।

ऐसे तूफ़ानों से बच न पाने का एहसास भी विशुद्ध आंतरिक स्तर पर हुई पूर्णता से उत्पन्न होता है। जीवन की ज्वालाएँ एक बंद भट्टी में जलती हैं जहाँ से ऊष्मा बाहर नहीं निकल सकती। जो लोग बाह्य स्तर पर जीते हैं, वे आरंभ से ही सुरक्षित रहते हैं: परन्तु जब उन्हें किसी खतरे का आभास ही न हो, तो क्या उनके पास बचाने के लिए कुछ बचता है? आंतरिक अनुभव की तीव्र तीव्रता आपको ऐसे क्षेत्रों में ले जाती है जहाँ खतरा पूर्णतः मंडराता है, क्योंकि जीवन जो सचेतन रूप से अपने मूल को अनुभव में साकार करता है, वह केवल स्वयं को नकार सकता है। जीवन महान तनावों को सहन करने के लिए बहुत सीमित और खंडित है। क्या सभी रहस्यवादियों ने

अपने महान परमानंद के बाद यह महसूस नहीं किया कि वे जी नहीं सकते? वे इस संसार से क्या अपेक्षा कर सकते हैं, जो सामान्य सीमाओं से परे जीवन, एकांत, निराशा और मृत्यु को अनुभव करते हैं?

बेतुकेपन के प्रति जुनून

कोई तर्क नहीं बचता। क्या कोई व्यक्ति, जो अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है, तर्कों, कारणों, परिणामों, नैतिक विचारों आदि पर ध्यान दे सकता है? बिलकुल नहीं। ऐसे व्यक्ति के लिए जीने के केवल निरर्थक उद्देश्य ही बचते हैं। घोर निराशा की ऊँचाइयों पर, निरर्थक के प्रति जुनून ही एकमात्र ऐसी चीज़ है जो अराजकता पर एक राक्षसी प्रकाश डाल सकती है। जब सभी वर्तमान कारण - नैतिक, सौंदर्यपरक, धार्मिक, सामाजिक, आदि - जीवन का मार्गदर्शन करना बंद कर देते हैं, तो कोई व्यक्ति शून्यता में विलीन हुए बिना जीवन कैसे जी सकता है? केवल निरर्थक से जुड़कर, पूर्ण निरर्थकता से प्रेम करके, किसी ऐसी चीज़ से प्रेम करके जिसका कोई सार नहीं है, लेकिन जो जीवन का भ्रम पैदा करती है।

मैं इसलिए जीता हूँ क्योंकि पहाड़ हँसते नहीं और कीड़े गाते नहीं। बेतुकेपन का जुनून केवल उसी व्यक्ति में पनप सकता है जिसने सब कुछ खो दिया हो, फिर भी वह अद्भुत रूपांतरणों से गुजरने में सक्षम हो। जिसने सब कुछ खो दिया हो, उसके जीवन में बेतुकेपन के जुनून के सिवा कुछ नहीं बचता। जीवन में और क्या ऐसी चीज है जो ऐसे व्यक्ति को प्रेरित कर सकती है? कौन से प्रलोभन? कुछ लोग कहते हैं: मानवता के लिए आत्म-बलिदान, जनहित, सौंदर्य की पूजा, इत्यादि। मुझे केवल वे लोग पसंद हैं जिन्होंने इन सब चीजों को त्याग दिया है - भले ही थोड़े समय के लिए। केवल उन्होंने ही पूर्णता से जीवन जिया है। केवल उन्हें ही जीवन के बारे में बोलने का अधिकार है। आप प्रेम या शांति को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन आप इसे वीरता के माध्यम से प्राप्त करते हैं, अज्ञानता से नहीं। एक ऐसा अस्तित्व जो एक महान पागलपन को नहीं छुपाता, उसका कोई मूल्य नहीं है। यह एक पत्थर, लकड़ी के टुकड़े या किसी सड़ी हुई चीज के अस्तित्व से कैसे भिन्न है? और फिर भी मैं आपसे कहता हूँ: पत्थर, लकड़ी या सड़न बनने की इच्छा रखने के लिए आपको एक महान पागलपन को छुपाना होगा। जब आप निरर्थकता की सारी विषैली मिठास का स्वाद चख लेते हैं, तभी आप पूर्णतः शुद्ध होते हैं, क्योंकि तभी आप निषेध को उसकी अंतिम अभिव्यक्ति तक पहुंचा पाते हैं। और क्या सभी अंतिम अभिव्यक्तियाँ निरर्थक नहीं होतीं?

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी नियति में केवल जहर का स्वाद चखना ही लिखा होता है, जिनके लिए कोई भी आश्चर्य एक दर्दनाक आश्चर्य होता है और हर अनुभव यातना का एक नया अवसर। यदि कोई मुझसे कहे कि इस प्रकार की पीड़ा के व्यक्तिपरक कारण होते हैं, जो व्यक्ति की विशिष्ट संरचना से संबंधित होते हैं, तो मैं पूछूंगा; क्या पीड़ा का मूल्यांकन करने का कोई वस्तुनिष्ठ मापदंड है? कौन निश्चित रूप से कह सकता है कि मेरा पड़ोसी मुझसे अधिक पीड़ा भोगता है या यीशु ने हम सभी से अधिक पीड़ा भोगी? कोई वस्तुनिष्ठ मापदंड नहीं है क्योंकि पीड़ा को शरीर की बाहरी उत्तेजना या स्थानीय जलन के अनुसार नहीं मापा जा सकता, बल्कि केवल उसी रूप में मापा जा सकता है जिस रूप में इसे महसूस किया जाता है और चेतना में प्रतिबिंबित किया जाता है। अफसोस, इस दृष्टिकोण से, किसी भी प्रकार का क्रम संभव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वयं की पीड़ा के साथ रहता है, जिसे वह पूर्ण और असीमित मानता है। यदि हम अपनी व्यक्तिगत पीड़ा की तुलना अब तक की दुनिया की सभी पीड़ाओं से करें, सबसे

भयानक वेदनाओं और सबसे जटिल यातनाओं से, सबसे क्रूर मृत्यु और सबसे दर्दनाक विश्वासघात से, सभी कुष्ठ रोगियों से, उन सभी से जो जिंदा जला दिए गए या भूख से मर गए, तो हम अपनी पीड़ा को कितना कम आंकेंगे? किसी को भी इस विचार से अपने कष्टों में सांत्वना नहीं मिलती कि हम सब नश्वर हैं, न ही किसी पीड़ित को दूसरों के अतीत या वर्तमान के कष्टों से कोई सांत्वना मिलती है। क्योंकि इस असंपूर्ण और खंडित संसार में, व्यक्ति पूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य है, अपने अस्तित्व को पूर्ण बनाने की इच्छा रखता है। प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व अपने आप में पूर्ण है। इसी कारण प्रत्येक मनुष्य ऐसे जीता है मानो वह ब्रह्मांड का केंद्र हो या इतिहास का केंद्र हो। तो फिर उसका कष्ट पूर्ण न कैसे हो सकता है? मैं अपने कष्ट को कम करने के लिए दूसरे के कष्ट को नहीं समझ सकता। ऐसे मामलों में तुलना करना व्यर्थ है, क्योंकि कष्ट एक आंतरिक अवस्था है, जिसमें कोई बाहरी सहायता नहीं कर सकती।

लेकिन अकेलेपन में भी एक बड़ा फायदा है। अगर किसी व्यक्ति का चेहरा उसके दुख को पूरी तरह से व्यक्त कर पाता, अगर उसकी सारी आंतरिक पीड़ा उसके चेहरे के भावों में झलक जाती, तो क्या होता? क्या हम तब भी संवाद कर पाते? क्या हम तब बात करते समय अपने चेहरे को हाथों से ढक नहीं लेते? अगर हमारे भीतर छिपी अनंत भावनाएं हमारे चेहरे की रेखाओं में पूरी तरह से व्यक्त हो जातीं, तो जीवन सचमुच असंभव हो जाता।

कोई भी आईने में खुद को देखने की हिम्मत नहीं करेगा, क्योंकि एक भयानक, दुखद छवि उसके चेहरे की बनावट में खून के धब्बों और निशानों, कभी न भरने वाले घावों और आँसुओं की अथाह धाराओं के साथ घुलमिल जाएगी। अगर मैं खून का ज्वालामुखी देख सकूँ, आग की तरह लाल और निराशा की तरह जलती हुई ज्वाला, जो रोज़मर्रा की आरामदायक और सतही शांति के बीच फूट पड़े, या अगर मैं अपने सभी छिपे हुए घावों को खुलते हुए देख सकूँ, जो हमें हमेशा के लिए एक खूनी विस्फोट बना दें, तो मुझे एक तरह का मोहक विस्मय होगा। तभी हम अकेलेपन के लाभ को सही मायने में समझ और सराह सकेंगे, जो हमारे दुख को शांत कर देता है और उसे दुर्गम बना देता है। दुख से निकला जहर हमारे अस्तित्व के ज्वालामुखी से फूटते हुए एक खूनी विस्फोट में पूरी दुनिया को जहर देने के लिए काफी होगा। दुख में इतना जहर है, इतना जहर है!

सच्ची एकांतता धरती और आकाश के बीच पूर्णतः पृथक होने का अहसास है। पूर्ण एकांत की इस अनुभूति से ध्यान भटकाने वाली कोई भी चीज़ नहीं होनी चाहिए: एक अत्यंत स्पष्ट अंतर्ज्ञान मनुष्य के सीमित स्वभाव के संसार की अनंत शून्यता के समक्ष संपूर्ण नाटक को प्रकट कर देगा। एकांत में सैर - आंतरिक जीवन के लिए अत्यंत फलदायी और साथ ही साथ जोखिम भरी - इस प्रकार होनी चाहिए कि संसार में मनुष्य के एकांत पर एकांतवासी के ध्यान में कोई बाधा न आए। एकांत में सैर गहन अंतर्मन प्रक्रिया के लिए अनुकूल होती है, विशेष रूप से शाम के समय, जब कोई भी सामान्य प्रलोभन ध्यान नहीं भटका सकता। तब संसार के बारे में रहस्योद्घाटन आत्मा के सबसे गहरे कोने से, उस स्थान से जहाँ वह जीवन से विमुख हो जाती है, जीवन के घाव से उत्पन्न होते हैं। आध्यात्मिकता प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को बहुत एकाकी होना चाहिए। जीवन में इतनी मृत्यु और इतने आंतरिक संघर्ष! एकाकीपन जीवन के इतने बड़े हिस्से को नकार देता है कि जीवन के विस्थापन में आत्मा का खिलना लगभग असहनीय हो जाता है। क्या यह

महत्वपूर्ण नहीं है कि वे लोग जिनमें अत्यधिक आध्यात्मिकता होती है, जो आत्मा के जन्म के समय जीवन पर लगे गहरे घाव को जानते हैं, वही इसके विरुद्ध उठते हैं? स्वस्थ, मोटे लोग, जिन्हें आत्मा का ज़रा भी ज्ञान नहीं होता, जिन्होंने जीवन की यातनाओं और अस्तित्व के मूल में निहित पीड़ादायक विरोधाभासों को कभी नहीं सहा होता, वही आत्मा की रक्षा में उठते हैं। जो लोग इसे वास्तव में जानते हैं, वे या तो इसे गर्व से सहन करते हैं या इसे एक विपत्ति मानते हैं। कोई भी व्यक्ति आत्मा से, जो जीवन के लिए इतनी हानिकारक उपलब्धि है, वास्तव में अपने हृदय से प्रसन्न नहीं हो सकता। जीवन के आकर्षण, भोलेपन और सहजता के बिना कोई जीवन से कैसे प्रसन्न हो सकता है? आत्मा की उपस्थिति जीवन की कमी, घोर एकाकीपन और दीर्घ पीड़ा का संकेत देती है। कौन आत्मा के माध्यम से मुक्ति की बात करने का साहस करता है? यह बिल्कुल भी सच नहीं है कि आंतरिक तल पर जीवन एक ऐसी चिंता उत्पन्न करता है जिससे मनुष्य आत्मा के माध्यम से बच निकलता है। इसके विपरीत, यह कहीं अधिक सत्य है कि आत्मा के माध्यम से मनुष्य असंतुलन, चिंता और साथ ही साथ भव्यता प्राप्त करता है। जो लोग जीवन के खतरों से अनजान हैं, उनसे आप आत्मा के खतरों के बारे में क्या उम्मीद कर सकते हैं? आत्मा के पक्ष में तर्क देना घोर अज्ञानता का संकेत है, ठीक वैसे ही जैसे जीवन के पक्ष में तर्क देना घोर असंतुलन का संकेत है। सामान्य व्यक्ति के लिए जीवन एक निर्विवाद वास्तविकता है; केवल बीमार व्यक्ति ही जीवन से प्रसन्न होता है और उसकी प्रशंसा करता है ताकि वह टूट न जाए। और उस व्यक्ति का क्या जो न तो जीवन की प्रशंसा कर सकता है और न ही आत्मा की?

मैं हूँ: इसलिए संसार अर्थहीन है। उस मनुष्य के दुखद कष्टों में क्या अर्थ है जिसके लिए अंततः सब कुछ व्यर्थ है और जिसका इस संसार का एकमात्र नियम पीड़ा है? यदि संसार मुझ जैसे किसी को सहन करता है, तो इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि मुझ पर, जिसे जीवन का सूर्य कहा जाता है, इतने बड़े धब्बे हैं कि समय के साथ वे इसके प्रकाश को ढक लेंगे। जीवन की क्रूरता ने मुझे पैरों तले रौंद डाला और मुझ पर अत्याचार किया, मेरी उड़ान के पंख काट दिए और मेरे सभी उचित सुख छीन लिए। 1 एक प्रतिभाशाली व्यक्ति बनने के लिए मैंने जो उत्साह और जुनून दिखाया, भविष्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मैंने जो मोहक आकर्षण अपनाया, और एक स्वाभाविक, आकर्षक, आंतरिक पुनर्जन्म पर मैंने जो ऊर्जा खर्च की, वह सब इस संसार की क्रूरता और अतार्किकता के आगे कमजोर साबित हुई, जिसने मुझमें अपनी सारी नकारात्मकता और जहर भर दिया। उच्च तापमान पर जीवन असंभव है। इसीलिए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि व्यथित लोग, जिनकी आंतरिक ऊर्जा इतनी तीव्र होती है कि वह चरम सीमा पर पहुँच जाती है, और जो सामान्य परिस्थितियों को सहन नहीं कर पाते, उनका पतन निश्चित है। असाधारण जीवन जीने वालों का विनाश जीवन के राक्षसी स्वरूप का एक पहलू है, लेकिन यह उसकी अपर्याप्तता का भी एक पहलू है, जो यह बताता है कि जीवन साधारण लोगों का विशेषाधिकार क्यों है। केवल साधारण लोग ही जीवन के सामान्य तापमान पर जीते हैं; बाकी लोग ऐसे तापमान पर भस्म हो जाते हैं जहाँ जीवन सहन नहीं कर सकता, जहाँ वे मुश्किल से साँस ले पाते हैं, जीवन से एक कदम दूर। मैं इस दुनिया में कुछ भी योगदान नहीं दे सकता क्योंकि मेरे पास केवल एक ही तरीका है: पीड़ा। आप शिकायत करते हैं कि लोग मतलबी, प्रतिशोधी, कृतघ्न और पाखंडी हैं? मैं आपको इन सभी कमियों से मुक्ति दिलाने के लिए पीड़ा विधि का सुझाव देता हूँ। इसे हर पीढ़ी पर लागू करें और इसके प्रभाव जल्द ही स्पष्ट हो जाएँगे। शायद इस तरह मैं भी मानवता के लिए उपयोगी बन सकूँ!

कोड़े, आग या इंजेक्शनों से हर इंसान को जीवन के अंतिम क्षणों की पीड़ा से तड़पाओ, और भयानक यातना के माध्यम से उसे मृत्यु के दर्शन से मिलने वाली महान शुद्धि प्राप्त होगी। फिर उसे मुक्त करो और उसे भय से तब तक भागने दो जब तक वह थककर गिर न जाए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसका प्रभाव सामान्य तरीकों से प्राप्त किसी भी प्रभाव से कहीं अधिक होगा। यदि मैं कर सकता, तो मैं जीवन की आमूल शुद्धि प्राप्त करने के लिए पूरी दुनिया को पीड़ा में डाल देता; मैं जीवन की जड़ों में गुप्त रूप से आग लगाता, उन्हें नष्ट करने के लिए नहीं बल्कि उन्हें एक नया और भिन्न रस, एक नई गर्मी देने के लिए। मैं दुनिया में जो आग लगाता, वह विनाश नहीं बल्कि ब्रह्मांडीय रूपांतरण लाती। इस तरह जीवन उच्च तापमान के अनुकूल हो जाता और साधारणता के लिए अनुकूल वातावरण नहीं रह जाता। और शायद इस सपने में, मृत्यु भी जीवन में अंतर्निहित नहीं रह जाती।

(ये पंक्तियाँ आज, 8 अप्रैल, 1933 को लिखी गई हैं, जब मैं बाईस वर्ष का हो गया हूँ। यह सोचना अजीब लगता है कि मैं पहले से ही मृत्यु के प्रश्न का विशेषज्ञ बन चुका हूँ।)

थकान और पीड़ा

क्या आप पिघलने की उस भयावह अनुभूति से परिचित हैं, बहती नदी में विलीन होने की उस अनुभूति से, जिसमें आपका अस्तित्व भौतिक द्रवीकरण द्वारा समाप्त हो जाता है? आपके भीतर की हर ठोस और सारगर्भित चीज़ एक थका देने वाली तरलता में पिघल जाती है, और केवल आपका सिर ही शेष रह जाता है। मैं एक सटीक, पीड़ादायक अनुभूति की बात कर रहा हूँ, किसी अस्पष्ट और अनिश्चित अनुभूति की नहीं। किसी मतिभ्रमपूर्ण स्वप्न की तरह, आपको लगता है कि केवल आपका सिर ही बचा है, बिना आधार, बिना सहारे, बिना शरीर के। इस अनुभूति का समुद्र तट पर या उदास स्वप्निल चिंतन में होने वाली उस अस्पष्ट और सुखदायक थकावट से कोई संबंध नहीं है; यह एक ऐसी थकावट है जो भस्म कर देती है और नष्ट कर देती है। कोई प्रयास, कोई आशा, कोई भ्रम अब आपको संतुष्ट नहीं कर सकता। अपनी ही विपत्ति से स्तब्ध, सोचने या कार्य करने में असमर्थ, ठंडे और घने अंधेरे में फँसे हुए, गहरे पश्चाताप के क्षणों की तरह अकेले, आप जीवन की नकारात्मक सीमा तक पहुँच चुके हैं, उसके परम तापमान तक, जहाँ जीवन के बारे में अंतिम भ्रम भी जम जाते हैं। पीड़ा का सच्चा अर्थ, जो केवल शुद्ध जुनून या निरर्थक कल्पना का संघर्ष नहीं है, बल्कि मृत्यु के चंगुल में जीवन का निराशाजनक संघर्ष है, इस गहन थकावट की भावना में प्रकट होता है। पीड़ा के विचार को थकावट और मृत्यु के विचार से अलग नहीं किया जा सकता। क्या पीड़ा एक संघर्ष है? लेकिन किसके साथ और किसलिए? पीड़ा की व्याख्या उसकी निरर्थकता से उत्पन्न उत्साह के रूप में, या एक ऐसे युद्ध के रूप में जिसका उद्देश्य स्वयं ही है, सरासर गलत है। वास्तव में, पीड़ा का अर्थ जीवन और मृत्यु के बीच का युद्ध है। चूंकि मृत्यु जीवन में अंतर्निहित है, इसलिए लगभग पूरा जीवन ही पीड़ा है। मैं जीवन और मृत्यु के बीच के युद्ध के उन नाटकीय क्षणों को ही पीड़ादायक कहता हूँ जब मृत्यु की उपस्थिति का सचेत और पीड़ादायक अनुभव होता है। सच्ची पीड़ा तब होती है जब आप मृत्यु के माध्यम से शून्यता में विलीन हो जाते हैं, जब थकावट की भावना आपको अपरिवर्तनीय रूप से भस्म कर लेती है और मृत्यु विजय प्राप्त करती है। प्रत्येक सच्ची पीड़ा में मृत्यु की विजय होती है, भले ही आप थकावट के उन क्षणों के बाद भी जीवित रहें।

इस उथल-पुथल में कुछ भी काल्पनिक नहीं है। हर पीड़ा एक निर्णायक छाप लिए होती है। क्या पीड़ा एक लाइलाज बीमारी के समान नहीं है जो हमें रुक-रुक कर सताती है? पीड़ादायक क्षण जीवन में मृत्यु की प्रगति को दर्शाते हैं, जीवन और मृत्यु के बीच संतुलन बिगड़ने के कारण हमारी चेतना में उत्पन्न एक नाटक को प्रकट करते हैं। ऐसे क्षण उस थकावट की अनुभूति के बिना संभव नहीं हैं जो जीवन को उसके पूर्ण नकारात्मक मूल्य तक ले आती है। पीड़ादायक क्षणों की आवृत्ति विघटन और विनाश का सूचक है। मृत्यु कुछ घृणित है, एकमात्र ऐसा जुनून जो कभी सुखदायक नहीं हो सकता। यहां तक कि जब आप मरना चाहते हैं, तब भी आप अपनी इस इच्छा के लिए एक अंतर्निहित पछतावे के साथ ऐसा करते हैं। मैं मरना चाहता हूँ, लेकिन मुझे इस बात का दुख है कि मैं मरना चाहता हूँ। यह वह भावना है जिसका अनुभव वे लोग करते हैं जो स्वयं को शून्यता में समर्पित कर देते हैं। सबसे विकृत भावना मृत्यु की भावना है। कल्पना कीजिए कि ऐसे लोग भी हैं जो मृत्यु के प्रति अपने विकृत जुनून के कारण सो नहीं पाते! काश मैं अपने बारे

में और इस दुनिया के बारे में कुछ भी न जानता!

निराशा और विकृत

विकृत रूप के अनेक रूपों में से, मुझे वह रूप अधिक असामान्य और जटिल लगता है जिसकी जड़ें निराशा में डूबी होती हैं। अन्य रूपों में तीव्रता कम होती है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि तीव्र भावनाओं के बिना विकृत रूप की कल्पना करना असंभव है। और निराशा से अधिक गहरी और स्वाभाविक तीव्रता और क्या हो सकती है? विकृत रूप केवल अत्यंत नकारात्मक अवस्थाओं में ही प्रकट होता है, जब जीवन के अभाव से अत्यधिक चिंता उत्पन्न होती है; विकृत रूप नकारात्मकता में एक उत्कर्ष है।

जब चेहरे की आकृति और रेखाएं विचित्र भावपूर्ण रूपों में विकृत हो जाती हैं, जब आंखों की चमक दूर के प्रकाश और छाया के साथ बदल जाती है, और विचार भी इसी तरह के विकृत रूपों का अनुसरण करते हैं, तो उस क्रूर, पीड़ादायक चेहरे में नकारात्मकता की ओर एक पागलपन भरा प्रचंड खिंचाव दिखाई देता है। वास्तव में तीव्र और अपरिवर्तनीय निराशा को विकृत अभिव्यक्तियों के अलावा किसी और रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि विकृतता शांति का पूर्ण निषेध है, वह पवित्रता, पारदर्शिता और स्पष्टता की अवस्था जो निराशा की अराजकता और शून्यता से बिल्कुल अलग है। क्या आपने कभी अनगिनत रातों की नींद हराम करने के बाद आईने में खुद को देखकर वह क्रूर और अद्भुत संतुष्टि महसूस की है? क्या आपने अनिद्रा की पीड़ा झेली है, जब आप रातों-रात मिनट गिनते रहते हैं, जब आप इस दुनिया में अकेले महसूस करते हैं, जब आपका नाटक इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण नाटक लगता है और इतिहास का कोई अर्थ नहीं रह जाता, उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है? जब आपके भीतर सबसे भयानक ज्वालाएं भड़क उठती हैं और आपका अस्तित्व उस दुनिया में अद्वितीय और अलग-थलग प्रतीत होता है जो केवल आपकी पीड़ा की परिणति के लिए बनी है? आपने उन अनगिनत और अनंत पीड़ाओं को अवश्य ही महसूस किया होगा, तभी आप आईने में खुद को देखते समय उस कुरूपता का स्पष्ट चित्र देख पाते हैं। यह पूर्ण तनाव का चित्र है, एक ऐसा तनावपूर्ण चेहरा जिसमें उस व्यक्ति की राक्षसी मोहक पीलापन समाया हुआ है जिसने भयानक, अंधेरी खाइयों पर संघर्ष किया है। क्या निराशा की यह कुरूप अभिव्यक्ति किसी खाई के समान नहीं है? इसमें अथाह गहराई के अथाह भंवर का आभास है, उस सर्वव्यापी अनंत का आकर्षण है जिसके सामने हम नियति के सामने नतमस्तक होते हैं। कितना अच्छा होता अगर कोई खुद को अनंत शून्य में फेंककर मर सकता! निराशा से उत्पन्न कुरूपता की जटिलता उसकी आंतरिक अनंतता को इंगित करने और उच्चतम तनाव का प्रचंड अनुभव उत्पन्न करने की क्षमता में निहित है। यह तीव्र पीड़ा सुखद रेखीय वक्रों और औपचारिक शुद्धता में कैसे प्रकट हो सकती है? कुरूपता मूलतः शास्त्रीयता के साथ-साथ शैली, सामंजस्य और पूर्णता के किसी भी विचार को नकार देती है।

आंतरिक नाटक के अनेक रूपों को समझने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए यह स्पष्ट है कि कुरूपता में गुप्त त्रासदियाँ छिपी होती हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होती हैं। जिसने भी अपना चेहरा कुरूपता से विकृत देखा है, वह इसे कभी नहीं भूल सकता, क्योंकि वह हमेशा स्वयं से भयभीत रहेगा। निराशा के बाद पीड़ादायक चिंता उत्पन्न होती है। कुरूपता भय और चिंता को

साकार करने के अलावा और क्या करती है?

पागलपन की पूर्वसूचना

आम तौर पर हमें यह समझना मुश्किल लगता है कि हममें से कुछ लोग पागल हो जाते हैं। लेकिन अराजकता में डूब जाना, जहाँ स्पष्टता के क्षण बिजली की चमक जैसे क्षणिक होते हैं, एक अटल नियति है। पूर्ण काव्यात्मकता से भरे प्रेरणादायक पन्ने, जिनमें आप अस्तित्व के पूर्ण नशे में डूबे होते हैं, केवल ऐसी तीव्र मानसिक तनाव की स्थिति में ही लिखे जा सकते हैं कि संतुलन में लौटना एक भ्रम मात्र रह जाता है। ऐसे प्रयासों के बाद कोई सामान्य जीवन नहीं जी सकता। अस्तित्व के आंतरिक स्रोत सामान्य विकास को बनाए नहीं रख पाते, और आंतरिक अवरोध अपनी वास्तविकता खो देते हैं। पागलपन का पूर्वाभास केवल ऐसे गहन अनुभवों के बाद ही प्रकट होता है। व्यक्ति अपनी सुरक्षा की भावना और तात्कालिक एवं ठोस अनुभूति खो देता है, मानो वह ऊँचाइयों पर उड़ रहा हो और चक्कर आ रहे हों। मस्तिष्क पर एक भारी बोझ पड़ता है, जो उसे एक भ्रम में बदल देता है, हालाँकि वह भयावह जैविक वास्तविकता जिससे हमारे अनुभव उत्पन्न होते हैं, केवल ऐसी संवेदनाओं के माध्यम से ही प्रकट हो सकती है। इस दमन से एक अवर्णनीय भय उत्पन्न होता है, जो आपको ज़मीन पर पटक देता है या हवा में उड़ा देता है। यह केवल मृत्यु का दम घोंटने वाला भय ही नहीं है जो मनुष्य को ग्रस्त करता है; यह एक और आतंक है, जो दुर्लभ रूप से लेकिन बिजली की चमक की तरह तीव्र रूप से घटित होता है, एक अचानक व्यवधान की तरह जो भविष्य की शांति की आशा को हमेशा के लिए समाप्त कर देता है।

पागलपन की इस विचित्र आशंका को सटीक रूप से परिभाषित करना असंभव है। पागलपन में सबसे भयानक बात यह है कि हम जीवित रहते हुए भी जीवन के पूर्ण और अपरिवर्तनीय नुकसान का अहसास करते हैं। मैं खाता-पीता रहता हूँ, लेकिन अपनी शारीरिक क्रियाओं के प्रति जो भी चेतना रखता हूँ, वह खो चुका हूँ। यह केवल एक अनुमानित मृत्यु है। पागलपन में व्यक्ति उन विशिष्ट व्यक्तिगत गुणों को खो देता है जो उसे ब्रह्मांड में अलग पहचान देते हैं, व्यक्तिगत दृष्टिकोण और चेतना की एक निश्चित दिशा। मृत्यु में व्यक्ति शून्यता में गिरने से सब कुछ खो देता है। इसीलिए मृत्यु का भय निरंतर और आवश्यक है, लेकिन वास्तव में पागलपन के भय से कम विचित्र है, जिसमें हमारी अर्ध-उपस्थिति मृत्यु की पूर्ण शून्यता के जैविक भय से कहीं अधिक जटिल चिंता पैदा करती है। लेकिन क्या पागलपन जीवन के दुख से मुक्ति नहीं है? इस प्रश्न का केवल सैद्धांतिक औचित्य है, क्योंकि व्यावहारिक रूप से, व्यथित व्यक्ति के लिए समस्या एक अलग रूप में, या बल्कि, एक अलग छाया में दिखाई देती है। पागलपन की आशंका, पागलपन में स्पष्टता के भय, वापसी और पुनर्मिलन के क्षणों के भय से और भी जटिल हो जाती है, जब आपदा का अंतर्ज्ञान इतना पीड़ादायक होता है कि वह लगभग और भी बड़े पागलपन को जन्म देता है। पागलपन से मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि पागलपन की आशंका से ग्रसित कोई भी व्यक्ति स्पष्टता के संभावित क्षणों के भय पर काबू नहीं पा सकता। यदि व्यक्ति अराजकता में छिपी रोशनी से भयभीत न होता, तो वह उसका स्वागत करता।

किसी व्यक्ति के पागलपन का विशिष्ट रूप शारीरिक और स्वभावगत स्थितियों द्वारा निर्धारित होता है। चूंकि अधिकांश पागल लोग अवसादग्रस्त होते हैं, इसलिए अवसादग्रस्त पागलपन

स्वाभाविक रूप से सुखद, प्रफुल्लित या उन्मादपूर्ण उन्माद की तुलना में अधिक आम है। गहरे अवसाद से ग्रस्त लोगों में इतनी अधिकता होती है कि उनमें से लगभग सभी में आत्महत्या की प्रवृत्ति होती है, जबकि स्वस्थ लोगों के लिए आत्महत्या एक बहुत ही समस्याग्रस्त समाधान प्रतीत होता है।

मैं एक शर्त पर पागल होना चाहता हूँ, और वो ये कि मैं एक खुशमिजाज पागल बन जाऊँ, जो हमेशा खुश रहे, बिना किसी परेशानी या जुनून के, सुबह से शाम तक बेसुध होकर हँसता रहे। हालाँकि मैं प्रकाशमय परमानंद की कामना करता हूँ, पर मैं इसकी कामना नहीं करूँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसके बाद घोर अवसाद आता है। इसके बजाय, मैं चाहता हूँ कि मुझ से गर्म प्रकाश की बौछार हो, जो पूरी दुनिया को रूपांतरित कर दे, प्रकाश का एक ऐसा विस्फोट जो प्रकाशमय शाश्वतता की शांति को बनाए रखे। परमानंद की सघनता से दूर, यह सब सुंदर हल्कापन और मुस्कुराती हुई गर्माहट से भरा हो। पूरी दुनिया प्रकाश के इस सपने में, आनंद की इस पारदर्शी और अवास्तविक अवस्था में तैरती रहे। बाधाएँ और पदार्थ, रूप और सीमाएँ अस्तित्वहीन हो जाएँ। फिर मुझे ऐसे परिदृश्य में प्रकाश में ही मृत्यु प्राप्त हो जाए।

मृत्यु पर

कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनके पास जाने पर या तो आप अलग-थलग पड़ जाते हैं या सीधे-सीधे आपकी जान ले लेते हैं। उसके बाद आपके पास खोने के लिए कुछ नहीं बचता। फिर, आपके पहले के "गंभीर" प्रयास - जीवन के विविध रूपों की आध्यात्मिक खोज, अप्राप्य चीजों के लिए असीम लालसा, अनुभववाद की सीमाओं से उत्पन्न निराशा - सब कुछ अतिउत्साही संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति मात्र रह जाते हैं, जिनमें उस गहन गंभीरता का अभाव होता है जो खतरनाक रहस्यों के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके व्यक्ति की विशेषता होती है। मैं यहाँ तथाकथित गंभीर लोगों की आध्यात्मिक शांति और खोखली गंभीरता की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि उस पागलपन भरे तनाव की बात कर रहा हूँ जो आपके जीवन के हर पल को शाश्वतता के स्तर पर ले आता है। यह गहन गंभीरता केवल औपचारिक समस्याओं का सामना करने से प्राप्त नहीं की जा सकती, चाहे वे कितनी भी कठिन क्यों न हों, क्योंकि वे केवल हमारी बुद्धि द्वारा उत्पन्न होती हैं, न कि हमारे अस्तित्व की संपूर्ण जैविक संरचना द्वारा। केवल जैविक और अस्तित्ववादी विचारक ही इस प्रकार की गंभीरता के योग्य होता है, क्योंकि उसके लिए सत्य जीवित है, जो व्यर्थ अटकलों के बजाय आंतरिक पीड़ा और जैविक अव्यवस्था से उत्पन्न होता है। अमूर्त मनुष्य की छाया से, जो केवल सोचने के आनंद के लिए सोचता है, सजीव मनुष्य का उदय होता है, जो एक जीवंत असंतुलन के कारण सोचता है, और जो विज्ञान और कला से परे है। मुझे वह विचार पसंद है जिसमें शरीर और रक्त की झलक हो, और मैं किसी खोखले अमूर्त विचार की तुलना में यौन तनाव या तंत्रिका अवसाद से उत्पन्न विचार को हज़ार गुना अधिक पसंद करता हूँ। क्या लोगों ने अभी तक यह नहीं सीखा है कि सतही बौद्धिक खेलों का समय समाप्त हो गया है, कि पीड़ा तर्क से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, कि निराशा की चीख सबसे सूक्ष्म विचार से भी अधिक अर्थपूर्ण होती है, और कि आँसुओं की जड़ें हमेशा मुस्कान से कहीं अधिक गहरी होती हैं? हम जीवित सत्यों के अनन्य मूल्य को क्यों नहीं स्वीकारना चाहते, उन सत्यों को जो हमारे भीतर जन्म लेते हैं और एक ऐसी वास्तविकता को प्रकट करते हैं जो केवल हमारे लिए ही उपयुक्त है?

हम यह क्यों नहीं स्वीकारना चाहते कि मृत्यु, जो कि अस्तित्व का सबसे खतरनाक मुद्दा है, पर गहन चिंतन किया जा सकता है? मृत्यु कोई बाहरी चीज़ नहीं है, जो जीवन से मौलिक रूप से भिन्न हो, क्योंकि मृत्यु जीवन से स्वतंत्र नहीं है। मृत्यु में प्रवेश करने का अर्थ, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है, विशेषकर ईसाइयों द्वारा, अंतिम सांस लेना और जीवन से गुणात्मक रूप से भिन्न क्षेत्र में प्रवेश करना नहीं है। बल्कि इसका अर्थ है जीवन के दौरान मृत्यु की ओर जाने वाले मार्ग को खोजना और जीवन के महत्वपूर्ण संकेतों में मृत्यु की अंतर्निहित खाई को खोजना। ईसाई धर्म और अमरता में विश्वास रखने वाले अन्य आध्यात्मिक विश्वासों के लिए, मृत्यु में प्रवेश करना एक विजय है, जीवन से मौलिक रूप से भिन्न अन्य क्षेत्रों की ओर एक द्वार है। ऐसी धारणाओं के विपरीत, मुझे लगता है कि पीड़ा का वास्तविक अर्थ जीवन में मृत्यु की अंतर्निहितता के प्रकटीकरण में निहित है। लेकिन पीड़ा का अनुभव इतना दुर्लभ क्यों है? क्या यह संभव है कि हमारी परिकल्पना पूरी तरह से गलत है और मृत्यु के आध्यात्मिक विश्लेषण को केवल मृत्यु के पारलौकिक स्वरूप को स्वीकार करके ही संभव है?

स्वस्थ, सामान्य, साधारण लोग न तो पीड़ा का अनुभव कर सकते हैं और न ही मृत्यु का। वे ऐसे जीते हैं मानो जीवन का कोई निश्चित स्वरूप हो। सामान्य लोगों के सतही संतुलन का अभिन्न अंग यह है कि वे जीवन को मृत्यु से पूर्णतः स्वतंत्र मानते हैं और मृत्यु को जीवन से परे एक वास्तविकता के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि वे मृत्यु को बाहरी शक्ति के रूप में देखते हैं, न कि जीवन की आंतरिक नियति के रूप में। औसत व्यक्ति के सबसे बड़े भ्रमों में से एक यह भूल जाना है कि जीवन मृत्यु का बंदी है। आध्यात्मिक रहस्योद्घाटन तभी शुरू होते हैं जब किसी का सतही संतुलन डगमगाने लगता है और भोली सहजता का स्थान एक पीड़ादायक संघर्ष ले लेता है। औसत लोगों में मृत्यु का पूर्वाभास इतना दुर्लभ है कि व्यावहारिक रूप से कहा जा सकता है कि यह अस्तित्व में ही नहीं है। यह तथ्य कि मृत्यु का पूर्वाभास तभी प्रकट होता है जब जीवन अपनी नींव तक हिल जाता है, जीवन में मृत्यु की अंतर्निहितता को निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है। इन गहराइयों में अंतर्दृष्टि हमें दिखाती है कि जीवन की अखंडता में विश्वास कितना भ्रामक है और दानववाद के आध्यात्मिक आधार में विश्वास कितना निराधार है।

यदि मृत्यु जीवन का अभिन्न अंग है, तो मृत्यु का बोध जीवन को असंभव क्यों बना देता है? सामान्य मनुष्य इस बोध से विचलित नहीं होता, क्योंकि मृत्यु की प्रक्रिया जीवन शक्ति के क्षीण होने मात्र से ही संपन्न हो जाती है। ऐसे मनुष्य के लिए केवल अंतिम क्षणों की पीड़ा होती है, जीवन के मूल आधार से जुड़ी चिरस्थायी पीड़ा नहीं। मृत्यु के दृष्टिकोण से, जीवन का प्रत्येक कदम मृत्यु की ओर एक कदम है और स्मृति केवल शून्यता का प्रतीक है। आध्यात्मिक समझ से वंचित सामान्य मनुष्य को मृत्यु की ओर क्रमिक प्रगति का बोध नहीं होता, यद्यपि न तो वह और न ही कोई अन्य इसके अटल भाग्य से बच सकता है। परन्तु जब चेतना जीवन से स्वतंत्र हो जाती है, तो मृत्यु का प्रकटीकरण इतना प्रबल हो जाता है कि उसकी उपस्थिति समस्त भोलेपन, समस्त आनंदमय उत्साह और समस्त स्वाभाविक भोग-विलास को नष्ट कर देती है। मृत्यु का बोध होना विकृत और अत्यंत भ्रष्ट है। जीवन की भोली कविता, उसके प्रलोभन और आकर्षण सारहीन प्रतीत होते हैं। मनुष्य की अंतिम योजनाएँ और उसके धार्मिक भ्रम भी उतने ही खोखले हैं।

इस संसार में मृत्यु के प्रसार को देखना, यह देखना कि कैसे यह एक वृक्ष को नष्ट कर देती है और कैसे यह सपनों में प्रवेश कर जाती है, कैसे यह एक फूल या सभ्यता को मुरझा देती है, कैसे यह एक विनाशकारी बीमारी की तरह व्यक्ति और संस्कृति को खोखला कर देती है, इसका अर्थ है आँसुओं और पछतावे से परे, व्यवस्था और रूप से परे होना। जिसने मृत्यु की भयानक पीड़ा का अनुभव नहीं किया है, जो रक्त के उफान की तरह उठती और फैलती है, एक साँप की जकड़न की तरह जो भयावह मतिभ्रम उत्पन्न करती है, वह जीवन के राक्षसी स्वरूप और उस आंतरिक उमंग की अवस्था को नहीं जानता जिससे महान रूपांतरण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के काले नशे की अवस्था को समझना इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि कोई इस संसार के तत्काल अंत की कामना क्यों करता है। यह परमानंद का वह प्रकाशमान नशा नहीं है, जिसमें स्वर्ग के दर्शन अपनी भव्यता से आपको वश में कर लेते हैं और आप ऐसी पवित्रता तक पहुँच जाते हैं जो निराकारता में विलीन हो जाती है, बल्कि यह एक पागल, खतरनाक, विनाशकारी और पीड़ादायक काला नशा है, जिसमें मृत्यु भयानक साँप की आँखों के प्रलोभन के

साथ प्रकट होती है। ऐसी संवेदनाओं और छवियों का अनुभव करना वास्तविकता के सार के इतना करीब होना है कि जीवन और मृत्यु दोनों अपने भ्रमों को त्यागकर आपके भीतर अपना सबसे नाटकीय रूप प्राप्त कर लेते हैं। एक उदात्त पीड़ा जीवन और मृत्यु को एक भयानक भंवर में मिला देती है: एक क्रूर शैतानवाद कामुकता से आँसू उधार लेता है। मृत्यु के मार्ग पर एक लंबी पीड़ा के रूप में जीवन, जीवन के राक्षसी द्वंद्ववाद का एक और प्रकटीकरण मात्र है, जिसमें रूपों का जन्म केवल नष्ट होने के लिए होता है। जीवन की अतार्किकता रूप और विषयवस्तु के इस अत्यधिक विस्तार में, पुराने पहलुओं के स्थान पर नए पहलुओं को प्रतिस्थापित करने की इस उन्मत्त प्रेरणा में प्रकट होती है, हालांकि यह प्रतिस्थापन गुणात्मक सुधार के बिना होता है। वह व्यक्ति धन्य है जो स्वयं को इस विकास के प्रति समर्पित कर सकता है और प्रत्येक क्षण प्रस्तुत सभी संभावनाओं को आत्मसात कर सकता है, उस पीड़ादायक रूप से समस्याग्रस्त मूल्यांकन की अनदेखी करते हुए जो प्रत्येक क्षण एक दुर्गम सापेक्षता को उजागर करता है। भोलापन ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग है। लेकिन जो लोग जीवन को एक लंबी पीड़ा के रूप में अनुभव करते हैं, उनके लिए मोक्ष का प्रश्न सरल है। उनके मार्ग पर कोई मोक्ष नहीं है।

जीवन में मृत्यु की अंतर्निहितता का अहसास बीमारियों और लंबे समय तक चलने वाले अवसाद की अवस्थाओं के दौरान होता है। बेशक, इसके अन्य तरीके भी हैं, लेकिन वे आकस्मिक और व्यक्तिगत होते हैं, और उनमें बीमारी या अवसाद की तरह अहसास कराने की समान क्षमता नहीं होती।

यदि बीमारियों का संसार में कोई दार्शनिक उद्देश्य है, तो वह केवल यही सिद्ध करना हो सकता है कि जीवन की शाश्वतता का आभास कितना भ्रामक है और उसकी समाप्ति का भ्रम कितना नाजुक है। बीमारी में, मृत्यु हमेशा जीवन में विद्यमान रहती है। वास्तविक रोग हमें उन आध्यात्मिक वास्तविकताओं से जोड़ता है जिन्हें स्वस्थ, सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता। युवा लोग मृत्यु को जीवन से अलग मानते हैं। लेकिन जब कोई बीमारी उन्हें पूरी शक्ति से जकड़ लेती है, तो यौवन के सभी भ्रम और आकर्षण गायब हो जाते हैं। इस संसार में, केवल वही वास्तविक पीड़ाएँ हैं जो बीमारी से उत्पन्न होती हैं। बाकी सभी पर किताबीपन की घातक छाप होती है। केवल वही लोग जो वास्तव में पीड़ा सहते हैं, सच्ची संतुष्टि और असीम गंभीरता प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। बाकी लोग सामंजस्य, प्रेम, नृत्य और शालीनता के लिए पैदा होते हैं। और ऐसे कई लोग हैं जो निराशा, पीड़ा और मृत्यु के माध्यम से प्राप्त आध्यात्मिक ज्ञान को भोले-भाले प्रेम या नृत्य की मादक अचेतनता के बदले खुशी-खुशी त्याग देंगे। और ऐसे कई लोग हैं जो गुमनाम सुखी जीवन के लिए कष्टों से प्राप्त यश का त्याग कर देंगे।

सभी बीमारियाँ वीरतापूर्ण होती हैं, लेकिन यह वीरता प्रतिरोध की होती है, विजय की नहीं। बीमारी की वीरता जीवन के खोए हुए गढ़ों की रक्षा करती है। ये हानियाँ न केवल बीमार लोगों के लिए, बल्कि अवसाद के दौरों से बार-बार पीड़ित लोगों के लिए भी अपूरणीय होती हैं। यही कारण है कि वर्तमान मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ कुछ प्रकार के अवसादों में आम मृत्यु भय का पर्याप्त औचित्य नहीं पाती हैं। अवसाद की अवस्थाओं की संरचना ही उनकी मूलभूत समझ की कुंजी है। ये अवस्थाएँ, जिनमें संसार से अलगाव धीरे-धीरे और पीड़ादायक रूप से बढ़ता है,

मनुष्य को उसकी आंतरिक वास्तविकता के करीब लाती हैं और उसे अपने ही आत्मबोध में मृत्यु का अनुभव कराती हैं। बढ़ती हुई आंतरिकता आत्मबोध के मूल केंद्र की ओर बढ़ती है, उन सभी सामाजिक रूपों को पार करते हुए जो आमतौर पर इसे छिपाते हैं। इस केंद्र से परे पहुँचने पर, प्रगतिशील आंतरिकता उस क्षेत्र को खोजती है जहाँ जीवन मृत्यु से मिल जाता है, जहाँ मनुष्य अभी तक अस्तित्व के प्राथमिक स्रोतों से अलग नहीं हुआ है, जहाँ जीवन की राक्षसी लय पूर्ण अतार्किकता के साथ काम करती है। अवसाद के मामलों में, जीवन में मृत्यु की अंतर्निहितता की जागरूकता निरंतर असंतोष और बेचैनी का वातावरण बनाती है जिसे कभी शांत नहीं किया जा सकता।

जीवन में मृत्यु की उपस्थिति अस्तित्व में शून्यता का तत्व समाहित कर देती है। शून्यता के बिना मृत्यु की कल्पना नहीं की जा सकती, न ही नकारात्मकता के सिद्धांत के बिना जीवन की। मृत्यु का भय, जो कि मृत्यु द्वारा हमें विसर्जित की जाने वाली शून्यता का ही भय है, यह सिद्ध करता है कि मृत्यु शून्यता को ही अनिवार्य बनाती है। जीवन में मृत्यु की उपस्थिति शून्यता की जीवन पर अंतिम विजय का प्रतीक है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मृत्यु की उपस्थिति का शून्यता की ओर निरंतर मार्ग प्रशस्त करने के अलावा कोई अन्य अर्थ नहीं है।

यद्यपि शाश्वतता में विश्वास ऐतिहासिक मनुष्य के लिए एकमात्र सांत्वना के रूप में आवश्यक है, फिर भी जीवन और विशेष रूप से मनुष्य की इस त्रासदी का विनाशकारी अंत ऐसे भोले-भाले विश्वास के भ्रम को प्रदर्शित करेगा।

वास्तव में, एकमात्र भय मृत्यु का भय है। विभिन्न प्रकार के भय एक ही मूलभूत मनोवैज्ञानिक वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति मात्र हैं। जो लोग कृत्रिम तर्क के माध्यम से मृत्यु के भय को दूर करने का प्रयास करते हैं, वे पूरी तरह से गलत हैं, क्योंकि अमूर्त अवधारणाओं के माध्यम से किसी वास्तविक भय को समाप्त करना असंभव है। जो भी गंभीरता से मृत्यु के प्रश्न पर विचार करता है, उसे भय अवश्य होता है। यहाँ तक कि जो लोग शाश्वतता में विश्वास करते हैं, वे भी मृत्यु से भयभीत होने के कारण ही ऐसा करते हैं। उनके विश्वास में एक पीड़ादायक प्रयास निहित है - भले ही पूर्ण निश्चितता के बिना - उस मूल्यों के संसार को बचाने का जिसमें वे रहते हैं और जिसमें वे योगदान देते हैं, क्षणिक में निहित शून्यता को पराजित करने और शाश्वतता में सार्वभौमिकता को प्राप्त करने का प्रयास। धार्मिक आस्था के बिना मृत्यु का सामना करने पर कुछ भी शेष नहीं रहता। मृत्यु के अपरिवर्तनीय विनाश के सामने सार्वभौमिक श्रेणी और रूप भ्रामक और अप्रासंगिक हो जाते हैं। रूप और श्रेणी कभी भी जीवन और मृत्यु के गहन अर्थों को नहीं समझ सकते। क्या आदर्शवाद या तर्कवाद मृत्यु का प्रतिकार कर सकते हैं? बिलकुल नहीं। फिर भी अन्य दर्शन और सिद्धांत मृत्यु के बारे में लगभग कुछ नहीं कहते। एकमात्र मान्य दृष्टिकोण पूर्ण मौन या निराशा की चीख है।

कुछ लोग मानते हैं कि मृत्यु के भय का कोई गहरा औचित्य नहीं है, क्योंकि जब तक 'मैं' है, तब तक मृत्यु नहीं है, और एक बार मर जाने पर 'मैं' का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। ये लोग क्रमिक पीड़ा की विचित्र घटना को भूल चुके हैं। 'मैं' और मृत्यु के बीच यह कृत्रिम भेद उस व्यक्ति को क्या सांत्वना दे सकता है जिसे मृत्यु का प्रबल पूर्वाभास है? अपरिवर्तनीयता की

भावना से गहराई से ग्रस्त व्यक्ति के लिए तार्किक तर्क या सूक्ष्म चिंतन का क्या अर्थ हो सकता है? अस्तित्व संबंधी प्रश्नों को तार्किक धरातल पर लाने के सभी प्रयास व्यर्थ हैं। दार्शनिक मृत्यु के भय को स्वीकार करने में बहुत गर्व महसूस करते हैं और बीमारी की आध्यात्मिक उर्वरता को स्वीकार करने में बहुत अहंकारी हैं। मृत्यु पर उनके चिंतन में एक पाखंडी शांति झलकती है; वास्तव में, वे किसी और से कहीं अधिक भय से कांपते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि दर्शनशास्त्र आंतरिक पीड़ाओं को छुपाने की कला है।

पीड़ा की अनुभूति के साथ हमेशा मौजूद रहने वाली, अपरिवर्तनीय और अटल सत्य की अनुभूति, भय से भरी एक पीड़ादायक स्वीकृति को जन्म दे सकती है, लेकिन मृत्यु के प्रति प्रेम या सहानुभूति जैसी कोई भावना नहीं होती। मरने की कला सीखी नहीं जा सकती, क्योंकि इसकी कोई तकनीक या नियम नहीं हैं। पीड़ा की अटल प्रकृति का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अनंत और तीव्र पीड़ा के माध्यम से करता है। अधिकांश लोग अपने भीतर की धीमी पीड़ा से अनभिज्ञ होते हैं। उनके लिए केवल एक ही प्रकार की पीड़ा होती है, वह पीड़ा जो पूर्ण शून्यता में गिरने से ठीक पहले आती है। केवल पीड़ा के ऐसे क्षण ही चेतना में महत्वपूर्ण अस्तित्वगत रहस्योद्घाटन लाते हैं। इसीलिए वे धीमी गति से प्रकट होने वाली पीड़ा के अर्थ को समझने का प्रयास करने के बजाय अंत से ही सब कुछ की अपेक्षा करते हैं। अंत उन्हें बहुत कम ज्ञान देगा, और वे उतने ही अज्ञानी होकर मरेंगे जितना वे जिए हैं।

क्योंकि पीड़ा समय के साथ घटित होती है, इसलिए कालिकता न केवल रचनात्मकता के लिए बल्कि मृत्यु के लिए भी एक शर्त है, मरने की नाटकीय घटना के लिए। इस प्रकार समय का राक्षसी स्वरूप प्रकट होता है, जिसमें जीवन और मृत्यु, सृजन और विनाश, दोनों ही पारलौकिक तल की ओर अभिसरण किए बिना विकसित होते हैं।

अटल सत्य का वह अहसास, जो हमारी अंतरात्मा की प्रवृत्तियों के विपरीत एक अपरिहार्य आवश्यकता के रूप में प्रकट होता है, समय के क्रूर स्वभाव के कारण ही संभव है। यह दृढ़ विश्वास कि आप एक अटल भाग्य से बच नहीं सकते और समय विनाश की भयावह प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के अलावा कुछ नहीं करेगा, एक अपूरणीय पीड़ा की अभिव्यक्ति है। तो क्या शून्यता ही मुक्ति है? लेकिन शून्यता में मुक्ति कैसे संभव है? यदि अस्तित्व के माध्यम से मुक्ति लगभग असंभव है, तो अस्तित्व की पूर्ण अनुपस्थिति के माध्यम से यह कैसे संभव हो सकती है?

क्योंकि अस्तित्व में या शून्यता में कोई मुक्ति नहीं है, इसलिए इस संसार को इसके शाश्वत नियमों सहित चकनाचूर कर दिया जाए!

उदासी

आत्मा की प्रत्येक अवस्था अपना बाहरी रूप धारण कर लेती है या अपनी प्रकृति के अनुसार आत्मा को रूपांतरित कर लेती है। सभी महान और गहन अवस्थाओं में व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ स्तरों के बीच घनिष्ठ सामंजस्य होता है। एक समतल और बंद स्थान में उमंग का अनुभव अकल्पनीय है। मनुष्य की आँखें बाहरी रूप से वही देखती हैं जो उन्हें आंतरिक रूप से व्याकुल करता है। परमानंद कभी भी विशुद्ध रूप से आंतरिक संतुष्टि नहीं होता; यह एक प्रकाशमान आंतरिक उन्माद का बाहरी रूप होता है। परमानंद की अवस्था में किसी व्यक्ति के चेहरे को

देखकर ही उसके आंतरिक तनाव के सभी तत्वों को पूरी तरह समझा जा सकता है।
उदासी को बाहरी अनंतता की आवश्यकता क्यों होती है? क्योंकि यह असीम और शून्य विस्तार है। व्यक्ति सकारात्मक या नकारात्मक रूप से सीमाओं को पार कर सकता है। उमंग, उत्साह, क्रोध, ये सभी अतिप्रवाहित तीव्रता के सकारात्मक रूप हैं जो प्रतिबंधात्मक बाधाओं को तोड़ते हैं और सामान्य अवस्थाओं से परे जाते हैं। ये जीवन, ऊर्जा और जैविक विस्तार की अधिकता से उत्पन्न होते हैं। ऐसी सकारात्मक अवस्थाओं में, जीवन अपनी सामान्य सीमाओं से परे जाता है, स्वयं को नकारने के लिए नहीं, बल्कि अपनी सुलगती ऊर्जाओं को मुक्त करने के लिए, जो अन्यथा एक हिंसक प्रलय का कारण बन सकती हैं। नकारात्मक आध्यात्मिक अवस्थाओं के लिए सीमाओं को पार करने का अर्थ बिल्कुल अलग है, क्योंकि यह प्रचुरता की अधिकता से नहीं, बल्कि इसके ठीक विपरीत होता है। अस्तित्व की गहराई में एक शून्य उत्पन्न होता है, जो कैंसर की तरह धीरे-धीरे फैलता है।
उदासी में व्याप्त शून्यता की ओर विस्तार की अनुभूति की जड़ें सभी नकारात्मक अवस्थाओं की विशेषता वाली थकावट में निहित हैं। यह थकावट मनुष्य को संसार से अलग कर देती है। जीवन की तीव्र लय, उसकी आंतरिक धड़कन कमजोर पड़ जाती है। थकावट ज्ञान का पहला जैविक निर्धारक है। क्योंकि यह मनुष्य को संसार से अलग करने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है, थकावट व्यक्ति को उस परिप्रेक्ष्य की ओर ले जाती है जो संसार को मनुष्य के सामने रखता है। थकावट व्यक्ति को जीवन के सामान्य स्तर से नीचे भी ले जाती है, जिससे जीवन के संकेतों का केवल एक अस्पष्ट पूर्वाभास ही संभव हो पाता है। इसलिए उदासी उस क्षेत्र से उत्पन्न होती है जहाँ जीवन अनिश्चित और समस्याग्रस्त होता है। इसका उद्गम ही ज्ञान के लिए इसकी उर्वरता और जीवन के लिए इसकी बांझपन का कारण है।
सामान्य मनःस्थिति में व्यक्ति जीवन के विभिन्न पहलुओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है, जबकि उदासी में उनसे विमुख होकर संसार का एक अस्पष्ट अहसास उत्पन्न होता है। एकाकी अनुभव और एक विचित्र दृष्टि संसार के ठोस स्वरूपों को विलीन कर देती है। वे एक अमूर्त और पारदर्शी आवरण धारण कर लेते हैं। विशिष्ट और ठोस हर चीज से उत्तरोत्तर विरक्ति व्यक्ति को एक ऐसी दृष्टि तक ले जाती है जो सार खोकर आकार में बढ़ जाती है। इस आरोहण, इस ऊँचाई की ओर उड़ान, संसार से ऊपर उठने के बिना कोई उदासी की अवस्था विद्यमान नहीं हो सकती। न तो अहंकार, न ही तिरस्कार, न ही निराशा, न ही अनंत नकारात्मकता की ओर कोई आवेग, बल्कि लंबे ध्यान और थकान से उत्पन्न अस्पष्ट स्वप्निलता ही इस प्रकार के उत्थान की ओर ले जाती है। उदासी में मनुष्य को पंख इसलिए नहीं मिलते कि वह संसार का आनंद ले, बल्कि इसलिए कि वह एकाकी हो सके। उदासी में एकाकीपन का क्या अर्थ है? क्या यह आंतरिक और बाह्य अनंतता की भावना से संबंधित नहीं है? उदासी भरी दृष्टि भावहीन, परिप्रेक्ष्यहीन होती है। उदासी की आंतरिक अनंतता और अस्पष्टता, जिसे प्रेम की उर्वर अनंतता से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, एक ऐसे स्थान की मांग करती है जिसकी सीमाएं अगम्य हैं। उदासी में कोई स्पष्ट या निश्चित इरादे नहीं होते, जबकि सामान्य अनुभव के लिए ठोस वस्तुओं और रूपों की आवश्यकता होती है।

उदासी और अलगाव की भावना मनुष्य को उसके प्राकृतिक परिवेश से अलग कर देती है। अनंतता के प्रति उसका दृष्टिकोण उसे अकेला और परित्यक्त दिखाता है। संसार की अनंतता के प्रति हमारी चेतना जितनी तीव्र होती है, अपनी सीमितता का हमारा अहसास उतना ही तीव्र होता है। कुछ अवस्थाओं में यह अहसास अत्यंत कष्टदायक होता है, लेकिन उदासी में यह कम पीड़ादायक और कभी-कभी सुखदायक भी होता है।

संसार की अनंतता और मनुष्य की सीमितता के बीच का अंतर निराशा का एक गंभीर कारण है; लेकिन जब कोई उदासी की अवस्था में इस अंतर को देखता है, तो यह पीड़ादायक नहीं रह जाता और संसार एक विचित्र, अस्वस्थ सुंदरता से परिपूर्ण प्रतीत होता है। वास्तविक एकांत मनुष्य के जीवन में एक पीड़ादायक विराम, मृत्यु के दूत के साथ एक अकेला संघर्ष है। एकांत में जीने का अर्थ है जीवन से सभी अपेक्षाओं का त्याग करना। एकांत में एकमात्र आश्चर्य मृत्यु है। महान एकांतवासी संसार से इसलिए विमुख नहीं हुए कि वे जीवन के लिए स्वयं को तैयार करें, बल्कि इसलिए कि वे जीवन के अंत की प्रतीक्षा धैर्यपूर्वक करें। रेगिस्तानों और गुफाओं से जीवन के बारे में कोई संदेश नहीं मिलता। क्या हमने रेगिस्तान में शुरू हुए सभी धर्मों को नकार नहीं दिया है? महान एकांतवासियों के सभी ज्ञान और स्वप्न प्रकाश और विजय के मुकुट के बजाय पतन और अंत के एक प्रलयकारी दृश्य को प्रकट करते हैं।

उदासी से ग्रस्त व्यक्ति का एकांत उतना गहरा नहीं होता। कभी-कभी तो उसमें एक कलात्मकता भी झलकती है। क्या हम मधुर उदासी या कामुक उदासी की बात नहीं कर रहे हैं? उदासी अपनी निष्क्रियता के कारण ही एक कलात्मक मनोदशा है।

जीवन के प्रति सौंदर्यपरक दृष्टिकोण चिंतनशील निष्क्रियता से चिह्नित होता है, जो अपनी व्यक्तिपरकता के अनुरूप हर चीज का यादृच्छिक रूप से चयन करता है। संसार एक रंगमंच है, और मनुष्य, दर्शक, निष्क्रिय रूप से इसे देखता है। जीवन को तमाशे के रूप में देखने से इसका दुखद तत्व और साथ ही वे विरोधाभास भी समाप्त हो जाते हैं जो आपको बवंडर की तरह संसार के पीड़ादायक नाटक में खींच ले जाते हैं। सौंदर्यपरक अनुभव, जहाँ प्रत्येक क्षण छापों का विषय होता है, दुखद अनुभव में निहित गहन तनावों को शायद ही समझ पाता है, जहाँ प्रत्येक क्षण नियति का विषय होता है। स्वप्निलता, जो सभी सौंदर्यपरक अवस्थाओं का केंद्र है, त्रासदी में अनुपस्थित होती है। निष्क्रियता, स्वप्निलता और मोहक आकर्षण उदासी के सौंदर्यपरक तत्व हैं। फिर भी, इसके विविध रूपों के कारण, यह विशुद्ध रूप से सौंदर्यपरक नहीं है। गहरी उदासी भी काफी आम है।

लेकिन सबसे पहले, मधुर उदासी क्या है? क्या आपने गर्मियों की दोपहरों में उस विचित्र आनंद का अनुभव नहीं किया है जब आप बिना किसी विशेष विचार के अपनी इंद्रियों के वश में हो जाते हैं और जब शांत शाश्वतता का आभास आपकी आत्मा को एक अनोखी शांति प्रदान करता है? ऐसा लगता है मानो सभी सांसारिक चिंताएँ और सभी आध्यात्मिक संदेह उस असीम सुंदरता के प्रदर्शन के सामने मौन हो जाते हैं, जिसका आकर्षण सभी प्रश्नों को निरर्थक बना देता है। उथल-पुथल और उमंग से परे, एक शांत अस्तित्व आसपास की भव्यता का आनंद विवेकपूर्ण कामुकता के साथ लेता है। शांति, किसी भी प्रकार की तीव्रता का अभाव, उदासी का मूल तत्व है।

पश्चाताप, जो उदासी में अंतर्निहित है, इसकी तीव्रता के अभाव को और बढ़ा देता है। लेकिन यद्यपि पश्चाताप निरंतर हो सकता है, यह कभी इतना तीव्र नहीं होता कि गहरा दुख उत्पन्न करे। पश्चाताप एक गहन घटना को भावनात्मक रूप से व्यक्त करता है: जीवन से मृत्यु की ओर अग्रसर होना। यह हमें दिखाता है कि हमारे भीतर कितना कुछ मर चुका है। मुझे उस चीज़ का पश्चाताप है जो मेरे भीतर और मुझसे मर गई। मैं केवल अतीत के अनुभवों के भूत को ही जीवन में वापस लाता हूँ। पश्चाताप समय के राक्षसी महत्व को उजागर करता है: विकास लाने के साथ-साथ, यह अप्रत्यक्ष रूप से मृत्यु को भी जन्म देता है।

पश्चाताप मनुष्य को उदास तो कर देता है, लेकिन उसकी आकांक्षाओं को पंगु या संकुचित नहीं करता, क्योंकि पश्चाताप में अपूरणीयता का बोध अतीत पर केंद्रित हो जाता है और भविष्य कुछ हद तक अनिश्चित बना रहता है। उदासी किसी शारीरिक पीड़ा से उत्पन्न होने वाली गहन, बंद गंभीरता की अवस्था नहीं है, क्योंकि इसमें वास्तविक दुख की अवस्थाओं में पाए जाने वाले अपरिवर्तनीयता के भयानक बोध का अभाव होता है। यहाँ तक कि घोर उदासी भी केवल एक अस्थायी मनोदशा है, कोई जन्मजात लक्षण नहीं। इसका स्वप्निल स्वरूप कभी पूरी तरह से अनुपस्थित नहीं होता, इसलिए घोर उदासी कभी भी वास्तविक बीमारी नहीं हो सकती। मधुर और मोहक उदासी, साथ ही घोर उदासी, समान लक्षण प्रदर्शित करती है: आंतरिक शून्यता, बाह्य अनंतता, संवेदनाओं की अस्पष्टता, स्वप्निलता, उदात्तीकरण। इनका अंतर केवल भावात्मक स्वरों के दृष्टिकोण से ही स्पष्ट होता है। संभवतः उदासी की बहुआयामी प्रकृति इसकी स्वयं की प्रकृति से अधिक व्यक्तिपरकता की संरचना से उत्पन्न होती है। विशेष रूप से तीव्र न होने के कारण, यह अन्य अवस्थाओं की तुलना में अधिक उतार-चढ़ाव दिखाती है। सक्रिय गुणों की तुलना में अधिक काव्यात्मक गुणों से संपन्न, इसमें एक निश्चित सौम्य सुंदरता है जो दुखद और तीव्र उदासी से पूरी तरह से रहित है।

उदासी भरे परिदृश्यों में भी वही सुंदरता झलकती है। डच या पुनर्जागरण काल के परिदृश्यों का विस्तृत परिप्रेक्ष्य, प्रकाश और छायाओं की अनंतता, अनंतता का प्रतीक लहरदार घाटियाँ, भौतिक जगत को आध्यात्मिक रूप देने वाली प्रकाश की किरणें और बुद्धिमानी से मुस्कुराते मनुष्यों की आशाएँ और पछतावे - संपूर्ण परिप्रेक्ष्य एक सहज उदासी भरी सुंदरता से परिपूर्ण है। ऐसे परिदृश्य में, मनुष्य मानो खेद और निराशा से कहता है: “हम क्या कर सकते हैं? हमारे पास बस यही है!” सारी उदासी के अंत में सांत्वना या त्याग की संभावना होती है। इसका सौंदर्यपरक पहलू भविष्य में सामंजस्य की संभावनाएँ रखता है जो गहन जैविक उदासी में नहीं होतीं। बाद वाला अपरिवर्तनीय में समाप्त होता है, जबकि पहले वाला सुंदर स्वप्न में।

कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है

मेरे लिए दुख सहना और सोचना कितना महत्वपूर्ण हो सकता है? इस संसार में मेरी उपस्थिति कुछ शांत जीवन को भंग करेगी और दूसरों के अवचेतन और सुखद भोलेपन को झकझोर देगी। यद्यपि मुझे लगता है कि मेरी त्रासदी इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी है - साम्राज्यों के पतन से भी बड़ी - फिर भी मैं अपनी पूर्ण तुच्छता से अवगत हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं इस ब्रह्मांड में कुछ भी नहीं हूँ; फिर भी मुझे लगता है कि मेरा अस्तित्व ही एकमात्र वास्तविक अस्तित्व है। यदि मुझे संसार और स्वयं के बीच चुनाव करना पड़े, तो मैं संसार, उसके प्रकाश और नियमों को त्याग दूँगा, पूर्ण शून्यता में अकेले विलीन होने से नहीं डरूँगा। यद्यपि मेरे लिए जीवन एक यातना है, मैं इसे त्याग नहीं सकता, क्योंकि मैं उन परम मूल्यों में विश्वास नहीं करता जिनके नाम पर मैं स्वयं को बलिदान कर दूँगा। यदि मैं पूरी तरह ईमानदार होता, तो मैं कहता कि मुझे नहीं पता कि मैं क्यों जीता हूँ और क्यों जीना नहीं छोड़ता। इसका उत्तर शायद जीवन के अतार्किक चरित्र में निहित है जो बिना किसी कारण के स्वयं को बनाए रखता है। क्या होगा यदि जीने के केवल बेतुके उद्देश्य ही हों? क्या उन्हें तब भी उद्देश्य कहा जा सकता है? यह संसार किसी विचार या विश्वास के नाम पर बलिदान के योग्य नहीं है। आज हम कितने खुश हैं, सिर्फ इसलिए कि दूसरों ने हमारी भलाई और ज्ञान के लिए अपनी जान दी? भलाई? ज्ञान? अगर कोई मेरी खुशी के लिए मरा होता, तो मैं और भी दुखी होता, क्योंकि मैं अपना जीवन कब्रिस्तान पर नहीं बसाना चाहता। कई बार मुझे इतिहास के सारे दुखों का बोझ अपने ऊपर महसूस होता है, क्योंकि मैं समझ नहीं पाता कि कुछ लोगों ने हमारे लिए खून क्यों बहाया। यह कितनी बड़ी विडंबना होगी अगर हम यह तय कर लें कि वे हमसे ज्यादा खुश थे। इतिहास धूल में मिल जाए! मुझे क्यों परवाह करनी चाहिए? मृत्यु हास्यास्पद लगे; दुख सीमित और रहस्यहीन; उत्साह अशुद्ध; जीवन तर्कसंगत; जीवन का द्वंद्व राक्षसी नहीं, बल्कि तार्किक; निराशा छोटी और अधूरी; अनंत काल सिर्फ एक शब्द; शून्यता का अनुभव एक भ्रम; नियति एक मजाक! मैं गंभीरता से खुद से पूछता हूँ, इन सबका क्या अर्थ है? सवाल क्यों उठाऊं, रोशनी क्यों डालूं या परछाईं क्यों देखूं? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि मैं अपने आँसू समुद्र तट पर रेत में, एकांत में बहा दूं? लेकिन मैं कभी रोई नहीं, क्योंकि मेरे आंसू हमेशा विचारों में बदल जाते हैं। और मेरे विचार आंसुओं जितने ही कड़वे होते हैं।

परमानंद

मुझे नहीं पता कि संशयवादी, जिसके लिए यह संसार एक ऐसा संसार है जिसमें कुछ भी हल नहीं होता, परमानंद के बारे में क्या सोचता है - वह परमानंद जो सबसे समृद्ध और सबसे खतरनाक है, जीवन के परम उद्गम का परमानंद। इससे आपको कोई स्पष्ट निश्चितता या निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं होता; फिर भी इसमें अंतर्निहित भागीदारी का अनुभव इतना तीव्र होता है कि यह सामान्य ज्ञान की सभी सीमाओं और श्रेणियों को पार कर जाता है। परिश्रम, पीड़ा और कष्ट के इस संसार से जीवन के आंतरिक गर्भगृह का द्वार खुल जाता है, जहाँ हम एक शानदार आध्यात्मिक समाधि में एक अत्यंत सरल दर्शन का अनुभव करते हैं। अस्तित्व की सतही और व्यक्तिगत परतें पिघल जाती हैं, और मूल गहराई प्रकट होती है। मैं सोचता हूँ कि क्या सतही रूपों के लुप्त हुए बिना वास्तव में आध्यात्मिक अनुभूति संभव है? जीवन के केंद्र तक केवल आकस्मिक और संयोगवश तत्वों से उसे शुद्ध करके ही पहुँचा जा सकता है। आध्यात्मिक अस्तित्वगत अनुभूति परिभाषा के अनुसार परमानंदमय होती है, और सभी आध्यात्मिक प्रणालियों की जड़ें परमानंद के रूपों में निहित होती हैं। परमानंद के कई अन्य रूप भी हैं, जो किसी विशेष आध्यात्मिक या स्वभावगत स्थिति में, जरूरी नहीं कि पारलौकिकता की ओर ले जाएं। शुद्ध अस्तित्व का परमानंद क्यों नहीं हो सकता? आध्यात्मिक अस्तित्ववाद संसार के आदिम उद्गमों के समक्ष परमानंद से जन्म लेता है; यह परम नशा है, सार के चिंतन में परमानंदमय आनंद है। परमानंद - अंतर्निहितता में उत्कर्ष, ज्ञानोदय, इस संसार के पागलपन का दर्शन - यही किसी भी तत्वमीमांसा का आधार है, जो जीवन के अंतिम क्षणों में भी मान्य है। कोई भी सच्चा परमानंद खतरनाक होता है। यह मिस्र के रहस्यों में दीक्षा के अंतिम चरण जैसा है, जब परम ज्ञान के बजाय, किसी को बताया जाता है, "ओसिरिस एक काला देवता है।" परम सत्ता अपुनर्प्रिय बनी रहती है। मैं जीवन के परम उद्गमों के परमानंद में ज्ञान का नहीं, बल्कि पागलपन का एक रूप देखता हूँ। आप इसका अनुभव केवल एकांत में ही कर सकते हैं, जब आपको ऐसा महसूस होता है जैसे आप संसार के ऊपर तैर रहे हों। एकांत ही पागलपन का उपयुक्त वातावरण है। यह उल्लेखनीय है कि संशयवादी भी इस प्रकार के परमानंद का अनुभव कर सकता है। क्या परमानंद का पागलपन, संदेह और निराशा के साथ निश्चितता और सार के इस विचित्र संयोजन के माध्यम से स्वयं को प्रकट नहीं करता?

निराशा का अनुभव किए बिना कोई भी व्यक्ति परमानंद का अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि दोनों अवस्थाओं में समान रूप से मौलिक शुद्धिकरण की आवश्यकता होती है, हालांकि वे प्रकार में भिन्न होती हैं।

तत्वमीमांसा की जड़ें अस्तित्व की जड़ों जितनी ही जटिल हैं।

वह दुनिया जिसमें कुछ भी हल नहीं होता

क्या इस धरती पर मृत्यु के अलावा कोई ऐसी चीज है जिस पर संदेह न किया जा सके? मृत्यु ही इस संसार की एकमात्र निश्चितता है। संदेह करते हुए भी जीना - यह एक विरोधाभास है, हालांकि दुखद नहीं, क्योंकि संदेह निराशा से कम तीव्र और कम कष्टदायी होता है। अमूर्त संदेह, जिसमें व्यक्ति केवल आंशिक रूप से भाग लेता है, अधिक आम है, जबकि निराशा में व्यक्ति पूरी

तरह और स्वाभाविक रूप से भाग लेता है। संदेह के सबसे स्वाभाविक और गंभीर रूप भी कभी निराशा की तीव्रता तक नहीं पहुँच पाते। निराशा की तुलना में, संशयवाद में कुछ हद तक शौकियापन और सतहीपन होता है। मैं हर चीज पर संदेह कर सकता हूँ, मैं दुनिया पर तिरस्कारपूर्ण मुस्कान बिखेर सकता हूँ, लेकिन यह मुझे खाने, शांति से सोने और शादी करने से नहीं रोकेगा। निराशा में, जिसकी गहराई को केवल अनुभव करके ही समझा जा सकता है, ऐसे कार्य केवल बड़े प्रयास से ही संभव हैं। निराशा की चरम सीमा पर किसी को भी सोने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार एक सच्चा निराश व्यक्ति अपनी त्रासदी को नहीं भूल सकता: उसकी चेतना उसकी व्यक्तिगत पीड़ा की वास्तविकता को संजोए रखती है। संदेह समस्याओं और चीजों के बारे में चिंता है, और इसकी उत्पत्ति सभी बड़े प्रश्नों की अनसुलझी प्रकृति में निहित है। यदि ऐसे प्रश्नों का हल निकल जाए, तो संशयवादी सामान्य अवस्था में लौट आएगा। इस संदर्भ में हताश व्यक्ति की स्थिति बिल्कुल अलग है: यदि सभी समस्याओं का समाधान हो जाए, तो भी उसकी चिंता कम नहीं होगी, क्योंकि उसकी चिंता उसके अपने आत्मनिष्ठ अस्तित्व से उत्पन्न होती है। हताशा वह अवस्था है जिसमें चिंता और बेचैनी अस्तित्व का अभिन्न अंग होती हैं। हताश व्यक्ति समस्याओं से पीड़ित नहीं होता, बल्कि अपने आंतरिक कष्ट और अग्नि से पीड़ित होता है। यह दुख की बात है कि इस संसार में किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। फिर भी, न तो कभी कोई ऐसा व्यक्ति था और न ही कभी होगा जो इस कारण आत्महत्या करे। बौद्धिक चिंता का हमारे संपूर्ण अस्तित्व की चिंता पर कितना गहरा प्रभाव होता है! इसीलिए मैं बौद्धिक जीवन की तुलना में नाटकीय जीवन को पसंद करता हूँ, जो आंतरिक अग्नि से प्रज्वलित और नियति के कष्टों से ग्रस्त होता है, जबकि बौद्धिक जीवन अमूर्त विचारों में उलझा रहता है जो हमारे आत्मनिष्ठा के सार को नहीं छूते। मैं अमूर्त चिंतन में जोखिम, पागलपन और जुनून की कमी से घृणा करता हूँ। जीवंत, भावुक चिंतन कितना उर्वर होता है! गीतात्मकता इसे हृदय में रक्त की तरह पोषित करती है! यह देखना रोचक है कि किस प्रकार मनुष्य, जो आरंभ में अमूर्त और अवैयक्तिक समस्याओं में इतना लीन रहता है कि स्वयं को ही भूल जाता है, रोग और पीड़ा का अनुभव करने के बाद अपनी आत्मनिष्ठता और अस्तित्व संबंधी प्रश्नों पर चिंतन करने लगता है। सक्रिय और वस्तुनिष्ठ मनुष्यों में अपनी नियति को रुचिकर समस्या बनाने के लिए पर्याप्त आंतरिक संसाधन नहीं होते। अपनी नियति को एक आत्मनिष्ठ परन्तु सार्वभौमिक समस्या में बदलने के लिए व्यक्ति को आंतरिक नरक के सभी चक्रों से गुजरना पड़ता है। यदि आप राख में नहीं बदल जाते, तो आप काव्यात्मक दर्शन कर सकेंगे। जब आप इस अनसुलझी समस्याओं से भरी दुनिया को तुच्छ भी नहीं समझते, तभी आप अंततः एक श्रेष्ठ प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व को प्राप्त कर सकेंगे। और ऐसा इसलिए नहीं होगा कि आपमें कोई विशेष गुण या उत्कृष्टता है, बल्कि इसलिए होगा कि आपकी व्यक्तिगत पीड़ा के अलावा आपको किसी और चीज में रुचि नहीं होगी।

विरोधाभासी और महत्वहीन

जो लोग प्रेरणा के आवेश में लिखते हैं, जिनके लिए विचार उनकी स्वाभाविक तंत्रिका प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है, वे एकता और व्यवस्थाओं की परवाह नहीं करते। ऐसी चिंताएँ, विरोधाभास और सतही विसंगतियाँ एक दरिद्र और नीरस व्यक्तिगत जीवन का संकेत देती हैं। केवल महान और खतरनाक विरोधाभास ही एक समृद्ध आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक हैं, क्योंकि केवल वे ही जीवन के प्रचुर आंतरिक प्रवाह की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जो लोग केवल कुछ आध्यात्मिक अवस्थाओं को जानते हैं और कभी भी जोखिम भरे जीवन नहीं जीते, उनमें विरोधाभास नहीं होते, क्योंकि उनके सीमित संसाधन विरोधों को जन्म नहीं दे सकते। लेकिन वे लोग जो घृणा, निराशा, अराजकता, शून्यता या प्रेम का तीव्र अनुभव करते हैं, जो प्रत्येक जुनून के साथ जलते हैं और धीरे-धीरे प्रत्येक के साथ और प्रत्येक में मर जाते हैं, जो केवल ऊँचाइयों पर ही साँस ले सकते हैं, जो हमेशा अकेले रहते हैं, खासकर जब वे दूसरों के साथ होते हैं - वे रैखिक रूप से कैसे विकसित हो सकते हैं और एक व्यवस्था में कैसे ढल सकते हैं? जो कुछ भी रूप, व्यवस्था, श्रेणी, ढाँचा या योजना है, वह चीजों को निरपेक्ष बनाने की ओर प्रवृत्त होता है और आंतरिक ऊर्जा की कमी, एक बांझ आध्यात्मिक जीवन से उत्पन्न होता है। जीवन के महान तनाव अराजकता और उत्साह के पागलपन की ओर ले जाते हैं। समृद्ध आध्यात्मिक जीवन में अराजकता और रोग की तीव्र उत्तेजना का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि इनमें सृजन के लिए प्रेरणा अनिवार्य प्रतीत होती है और विरोधाभास आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति बन जाते हैं। जो अराजकता से प्रेम नहीं करता, वह सृजनकर्ता नहीं है, और जो रोग का तिरस्कार करता है, उसे आत्मा की बात नहीं करनी चाहिए। मूल्य केवल उसी में है जो प्रेरणा से उत्पन्न होता है, जो हमारे अस्तित्व की अतार्किक गहराइयों से, हमारी आत्मनिष्ठा के गुप्त केंद्र से निकलता है। श्रम, प्रयास और परिश्रम का कोई मूल्य नहीं है, और बुद्धि की संतान निष्फल और नीरस है। मैं प्रेरणा के अमानवीय और सहज उत्साह, आध्यात्मिक अवस्थाओं की उत्तेजना, सारगर्भित गीतात्मकता और आंतरिक तनाव में आनंदित होता हूँ - ये चीजें प्रेरणा को सृजन का एकमात्र वास्तविकता बनाती हैं।

दुख पर

उदासी एक अस्पष्ट स्वप्निल अवस्था है, जो कभी गहरी या तीव्र नहीं होती, जबकि दुख एकांत, गंभीर और पीड़ादायक आंतरिक अवस्था है। कोई भी कहीं भी दुखी हो सकता है, लेकिन एकांत में दुख की तीव्रता बढ़ती है, जबकि उदासी खुले स्थानों में पनपती है। दुख लगभग हमेशा एक निश्चित कारण से उत्पन्न होता है और इसलिए केंद्रित होता है, जबकि उदासी के कोई बाहरी कारण नहीं होते। मैं जानता हूँ कि मैं दुखी क्यों हूँ, लेकिन मैं नहीं जानता कि मैं उदास क्यों हूँ। उदासी की अवस्थाएँ लंबे समय तक बनी रहती हैं, लेकिन किसी तीव्र तीव्रता तक नहीं पहुँचतीं। या, यूँ कहें कि उनकी लंबी अवधि चेतना से मूल कारण को मिटा देती है, जबकि दुख, जो लंबे समय तक नहीं रहता, उसमें कारण मौजूद रहता है, जिससे एक अंतर्नियंत्रित आंतरिक तनाव उत्पन्न होता है जो कभी विस्फोट नहीं करता बल्कि धीरे-धीरे अपने आप में समाप्त हो जाता है। न तो उदासी और न ही दुख विस्फोट करते हैं; न ही जीवन को चकनाचूर करते हैं। इसे एक दुख

भरी आह कहा जाता है, न कि दुख की चीख। दुख एक अत्यधिक हावी होने वाली अवस्था नहीं है। इसकी प्रकृति को समझने के लिए, संतुष्टि के क्षणों के बाद इसके बार-बार घटित होने पर विचार करना महत्वपूर्ण है। संभोग के बाद दुख क्यों होता है? शराब पीने के बाद या अत्यधिक शराब पीने के बाद हम दुखी क्यों हो जाते हैं? महान आनंद हमें दुख क्यों देते हैं? क्योंकि इन अतिभोगों से केवल अपूरणीय हानि और परित्याग की भावना ही शेष रह जाती है, जो अत्यधिक नकारात्मक तीव्रता तक पहुँच जाती है। ऐसे क्षणों में, लाभ के बजाय, हानि का गहरा अहसास होता है। जीवन के उन सभी क्षणों में दुख साथ रहता है जिनमें जीवन व्यतीत होता है। इसकी तीव्रता हानि के बराबर होती है। इस प्रकार मृत्यु सबसे बड़ा दुख है। किसी अंत्येष्टि को कभी भी "उदासी" नहीं कहा जा सकता, यह दुख और उदासी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर दर्शाता है। साथ ही, उदासी में उदासी का सौंदर्यपरक पहलू पूरी तरह से अनुपस्थित होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि गंभीर वास्तविकता और जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के करीब आते ही सौंदर्यशास्त्र का दायरा धीरे-धीरे कैसे संकुचित होता जाता है। मृत्यु, पीड़ा और दुख सौंदर्यशास्त्र का खंडन करते हैं। मृत्यु और सुंदरता पूरी तरह से विपरीत धारणाएँ हैं। मुझे मृत्यु से अधिक घृणित, अधिक गंभीर और भयावह कुछ भी नहीं पता! कुछ कवि इस परम निषेध को सुंदर कैसे पा सकते हैं जो विकृत का मुखौटा भी नहीं पहन सकता? यह विडंबना ही है कि हम मृत्यु की जितनी प्रशंसा करते हैं, उतना ही उससे डरते भी हैं। मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं मृत्यु की नकारात्मकता की प्रशंसा करता हूँ। यह एकमात्र ऐसी चीज है जिसकी मैं प्रशंसा तो कर सकता हूँ, पर उससे प्रेम नहीं कर सकता। इसकी भव्यता और अनंतता मुझे प्रभावित करती है, लेकिन मेरी निराशा इतनी गहरी है कि मुझे मृत्यु की आशा तक नहीं है। मैं मृत्यु से प्रेम कैसे कर सकता हूँ? इसके बारे में केवल विरोधाभासी तरीके से ही लिखा जा सकता है। जो कोई भी कहता है कि वह मृत्यु के बारे में कुछ निश्चित जानता है, वह दर्शाता है कि उसे इसका कोई पूर्वाभास भी नहीं है, भले ही वह इसे अपने भीतर धारण करता हो। प्रत्येक मनुष्य अपने साथ न केवल अपना जीवन, बल्कि अपनी मृत्यु भी लिए फिरता है। जीवन बस एक लंबा, खिंचा हुआ कष्ट है।

मुझे ऐसा लगता है कि उदासी भी इस पीड़ा का हिस्सा है। उदासी की ये तड़पें, क्या वे पीड़ा को व्यक्त नहीं करतीं? ये विकृतियाँ, सौंदर्य का खंडन, इतना अकेलापन दर्शाती हैं कि व्यक्ति को स्वयं से पूछना पड़ता है कि क्या उदासी का स्वरूप जीवन में मृत्यु को मूर्त रूप देने का एक तरीका नहीं है? उदासी एक रहस्य में प्रवेश का मार्ग है, एक ऐसा रहस्य जो इतना समृद्ध है कि उदासी कभी भी रहस्यमय बने रहना बंद नहीं करती। यदि रहस्यों का कोई पैमाना होता, तो उदासी अनंत रहस्यों के समूह में होती, असीमित, अक्षय रहस्य, एक ऐसा अवलोकन जो, बड़े अफसोस के साथ, हमेशा सत्य सिद्ध होता है: केवल वही लोग सुखी हैं जो कभी सोचते नहीं, या यों कहें कि जो केवल जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के बारे में सोचते हैं, और ऐसी चीजों के बारे में सोचना ही सोचना नहीं है। सच्चा चिंतन एक ऐसे राक्षस के समान है जो जीवन के स्रोत को दूषित करता है या एक ऐसी बीमारी के समान है जो उसकी जड़ों को भ्रष्ट करती है। हर पल सोचते रहना, सवाल उठाना, अपने भाग्य पर संदेह करना, जीवन की थकान महसूस करना, विचारों और जीवन से इतना थक जाना कि मन थक जाए, अपने जीवन के नाटक के प्रतीक के

रूप में धुएं और खून के निशान छोड़ जाना - इन सबका मतलब है कि आप इतने दुखी हैं कि चिंतन और विचार एक अभिशाप की तरह लगते हैं, जो आपके भीतर तीव्र घृणा उत्पन्न करते हैं। इस दुनिया में ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिन पर पछतावा किया जा सकता है, जबकि किसी भी चीज पर पछतावा नहीं करना चाहिए। लेकिन मैं खुद से पूछता हूँ; क्या यह दुनिया मेरे पछतावे के लायक है?

पूर्ण असंतोष

हम जैसे कुछ लोगों पर यह अभिशाप क्यों है जो कहीं भी सहज महसूस नहीं कर पाते, न धूप में, न मनुष्यों के साथ, न उनके बिना? हास्यबोध से अनभिज्ञ होना, एक अद्भुत उपलब्धि है! जो लोग गैर-जिम्मेदारी से वंचित हैं, वे सबसे दुखी हैं। उच्च स्तर की चेतना का होना, संसार के संबंध में स्वयं के प्रति हमेशा सजग रहना, ज्ञान के निरंतर तनाव में जीना, जीवन भर के लिए खो जाने के समान है। ज्ञान जीवन का अभिशाप है, और चेतना, उसके हृदय में एक खुला घाव। क्या मनुष्य होना दुखद नहीं है, वह निरंतर असंतुष्ट प्राणी जो जीवन और मृत्यु के बीच लटका रहता है? मैं मनुष्य होने से थक गया हूँ। अगर मैं कर सकता, तो मैं अपनी इस स्थिति को तुरंत त्याग देता, लेकिन तब मैं क्या बन जाता, एक जानवर? मैं अपने कदम पीछे नहीं हटा सकता। इसके अलावा, मैं एक ऐसा जानवर बन सकता हूँ जो दर्शनशास्त्र का इतिहास जानता हो। जहाँ तक महामानव बनने की बात है, वह मुझे सरासर और हास्यास्पद मूर्खता लगती है। क्या कोई समाधान हो सकता है, बेशक लगभग, एक प्रकार की अतिचेतना में? क्या कोई चेतना, चिंता और पीड़ा के सभी जटिल रूपों से परे (केवल इस दुनिया में ही नहीं, पशुता की ओर) जीवन के ऐसे क्षेत्र में नहीं जी सकता जहाँ शाश्वतता तक पहुँच केवल एक मिथक न रह जाए? जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं मानवता से विमुख हूँ। मैं अब पुरुष नहीं रहना चाहता, और न ही रह सकता हूँ। मुझे क्या करना चाहिए? किसी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के लिए काम करना, किसी लड़की को दुखी करना? दार्शनिक प्रणालियों में कमज़ोरियाँ ढूँढ़ना, नैतिक और सौंदर्यपरक आदर्शों के लिए लड़ना? यह सब बहुत कम है। मैं अपनी मानवता का त्याग करता हूँ, भले ही मैं खुद को अकेला पाऊँ। लेकिन क्या मैं इस दुनिया में पहले से ही अकेला नहीं हूँ जिससे मुझे अब कुछ भी उम्मीद नहीं है? आज के सामान्य आदर्शों और रूपों से परे, कोई एक ऐसी अतिचेतना में साँस ले सकता है जहाँ शाश्वतता का नशा इस दुनिया की चिंताओं को दूर कर दे, और जहाँ अस्तित्व उतना ही शुद्ध और निराकार हो जितना कि अस्तित्वहीनता।

आग का स्नान

निराकारता की अनुभूति प्राप्त करने के इतने सारे तरीके हैं कि उनका वर्गीकरण करना कठिन, बल्कि व्यर्थ ही होगा। फिर भी, मुझे लगता है कि अग्नि स्नान सबसे उत्तम तरीकों में से एक है। अग्नि स्नान: आपका अस्तित्व धधक रहा है, चारों ओर चमक और चिंगारियाँ हैं, नरक की तरह लपटों में भस्म हो रहा है। अग्नि स्नान इतनी गहराई से शुद्ध करता है कि अस्तित्व का नाश हो जाता है। इसकी ताप तरंगें और झुलसा देने वाली लपटें जीवन के मूल को जला देती हैं, उसकी जीवंतता को बुझा देती हैं, उसकी आक्रामकता को आकांक्षा में बदल देती हैं। अग्नि स्नान में रहना, उसकी समृद्ध चमक से रूपांतरित होना - यही निराकार शुद्धता की वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति नाचती हुई लौ के सिवा कुछ नहीं होता। गुरुत्वाकर्षण के नियमों से मुक्त होकर, जीवन भ्रम या स्वप्न बन जाता है। लेकिन यह सब नहीं है: अंत में, एक अत्यंत विचित्र और विरोधाभासी अनुभूति होती है, स्वप्निल अवास्तविकता की भावना राख बनने की अनुभूति में बदल जाती है। अग्नि स्नान का अंत हमेशा इसी प्रकार होता है: जब आंतरिक प्रज्वलन आपके अस्तित्व की नींव को झुलसा देता है, जब सब कुछ राख हो जाता है, तब अनुभव करने के लिए

और क्या बचता है? मेरी राख को चारों दिशाओं में बिखेरने, अंतरिक्ष में उन्मादपूर्वक बिखेरने, संसार के लिए एक शाश्वत अभिशाप बनने के विचार में एक साथ पागलपन भरा आनंद और अनंत विडंबना है।

विघटन

हर कोई अपनी मासूमियत नहीं खोता: इसलिए हर कोई दुखी नहीं होता। जो लोग भोलेपन से जीते हैं, मूर्खता से नहीं - क्योंकि मासूमियत एक पवित्र अवस्था है जिसमें ऐसी कमियाँ नहीं होतीं - बल्कि प्रकृति के प्रति सहज और स्वाभाविक प्रेम से, जिसके आकर्षण को मासूमियत हमेशा तत्परता से खोज लेती है, वे ही सामंजस्य प्राप्त करते हैं, जीवन के साथ एकरूपता प्राप्त करते हैं, जो निराशा की ऊँचाइयों पर संघर्ष करने वालों के लिए अत्यंत प्रशंसनीय है। विघटन का अर्थ है मासूमियत का पूर्ण नुकसान, वह प्यारा उपहार जो ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है, जो जीवन का शत्रु है। प्रेम और उत्साह का समृद्ध आधार, मासूमियत अस्तित्व के प्राकृतिक आकर्षण और विरोधाभासों के अचेतन अनुभव में आनंद है, जिनका अब कोई दुखद चरित्र नहीं रह गया है। मासूमियत के पवित्र आनंद को प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को सचेत रूप से विरोधाभासों में नहीं जीना चाहिए, न ही त्रासदी और मृत्यु के विचारों को जानना चाहिए, क्योंकि ऐसा ज्ञान उलझन भरा, जटिल और अलगाव की आवश्यकता वाला होता है। मासूमियत त्रासदी का विरोध करती है लेकिन प्रेम का स्वागत करती है, क्योंकि मासूम, आंतरिक विरोधाभासों से कभी परेशान नहीं होते, उदार आवेग रखते हैं। जीवन से खुद को अलग कर चुके व्यक्ति के लिए त्रासदी अत्यंत पीड़ादायक होती है, क्योंकि विरोधाभास न केवल उसके भीतर उत्पन्न होते हैं, बल्कि उसके और बाकी दुनिया के बीच भी उत्पन्न होते हैं। केवल दो मूलभूत दृष्टिकोण हैं: भोलापन और वीरता। अन्य सभी दृष्टिकोण इन्हीं से जुड़े होते हैं। मूर्खता से बचने के लिए इन दोनों में से किसी एक को चुनना आवश्यक है। लेकिन जिस व्यक्ति को यह चुनाव करना पड़ता है, उसके लिए भोलापन अब कोई विकल्प नहीं रह जाता, इसलिए केवल वीरता ही शेष रह जाती है। जीवन से कटे हुए, पूर्णता और सुख से वंचित लोगों के लिए वीरता एक विशेषाधिकार और अभिशाप दोनों है। सबसे व्यापक अर्थों में नायक होने का अर्थ है पूर्ण विजय की आकांक्षा रखना। लेकिन ऐसी विजय केवल मृत्यु के माध्यम से ही प्राप्त होती है। वीरता का अर्थ है जीवन से परे जाना; यह शून्यता में एक घातक छलांग है, भले ही नायक को इस बात का एहसास न हो कि उसकी ऊर्जा एक ऐसे जीवन से उत्पन्न होती है जो अपने सामान्य आधारों से वंचित है। जो कुछ भी भोलापन है, और जो इसकी ओर नहीं ले जाता, वह शून्यता से संबंधित है। क्या शून्यता के आकर्षणों के बारे में बात की जा सकती है? यदि हम ऐसा करते हैं, तो हमें यह भी कहना होगा कि वे इतने रहस्यमय हैं कि उन्हें समझना असंभव है।

शरीर की वास्तविकता पर

मुझे कभी समझ नहीं आता कि इतने सारे लोगों ने शरीर को भ्रम क्यों कहा है, ठीक वैसे ही जैसे मुझे कभी समझ नहीं आएगा कि वे जीवन के नाटक से, उसकी तमाम विरोधाभासों और कमियों के बीच, आध्यात्मिकता की कल्पना कैसे कर सकते हैं। शायद वे कभी शरीर, नसों, हर अंग के अस्तित्व से अवगत ही नहीं थे। लेकिन हालांकि मैं इस जागरूकता की कमी को नहीं समझता, मेरा मानना है कि यह सुख के लिए एक आवश्यक शर्त है। जो लोग अब भी जीवन की अतार्किकता से जुड़े हुए हैं, और चेतना के जन्म से पहले की उसकी जैविक लय में डूबे हुए हैं, वे उस अवस्था से अनभिज्ञ हैं जिसमें शरीर की वास्तविकता चेतना में निरंतर विद्यमान रहती है। यह

उपस्थिति एक मूलभूत अस्तित्वगत बीमारी को दर्शाती है। क्या अपनी नसों, अपने पैरों, अपने पेट, अपने हृदय, अपने अस्तित्व के हर एक हिस्से के प्रति निरंतर जागरूक रहना एक बीमारी नहीं है? इस जागरूकता के साथ, क्या अंगों ने अपने सामान्य कार्य करना छोड़ नहीं दिया है? शरीर की वास्तविकता सबसे भयानक वास्तविकताओं में से एक है। शरीर की पीड़ाओं के बिना आत्मा क्या होगी, और तीव्र तंत्रिका संवेदनशीलता के बिना चेतना क्या होगी? शरीर के बिना जीवन की कल्पना कैसे की जा सकती है, आत्मा के एक स्वतंत्र और बिना शर्त अस्तित्व के रूप में? केवल स्वस्थ और गैर-जिम्मेदार, आत्माविहीन पुरुष ही ऐसा सोच सकते हैं। आत्मा एक अस्तित्वगत बीमारी की संतान है, और मनुष्य एक बीमार प्राणी है। जीवन में आत्मा का होना एक असामान्य बात है। मैंने इतना कुछ त्याग दिया है, तो आत्मा का त्याग क्यों न करूँ? लेकिन क्या त्याग, जीवन की बीमारी होने के साथ-साथ, सबसे पहले आत्मा की बीमारी भी नहीं है?

मुझे नहीं पता

मुझे नहीं पता कि क्या सही है और क्या गलत; क्या जायज़ है और क्या नहीं; मैं न तो किसी का न्याय कर सकता हूँ और न ही किसी की प्रशंसा कर सकता हूँ। संसार में कोई मान्य मापदंड नहीं है और न ही कोई सुसंगत सिद्धांत। मुझे आश्चर्य होता है कि कुछ लोग अब भी ज्ञान के सिद्धांत में रुचि रखते हैं। सच कहूँ तो, मुझे ज्ञान की सापेक्षता से कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि संसार जानने योग्य नहीं है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है जैसे मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया हो, मैंने इस संसार की सारी सामग्री को समाहित कर लिया हो; तो कभी-कभी मेरे आस-पास का संसार अर्थहीन लगता है। तब सब कुछ कड़वा लगता है, मेरे भीतर एक शैतानी, भयानक कड़वाहट होती है जो मृत्यु को भी फीका कर देती है। अब मुझे पहली बार एहसास हो रहा है कि इस कड़वाहट को परिभाषित करना कितना कठिन है। हो सकता है कि मैं इसके लिए सैद्धांतिक आधार स्थापित करने की कोशिश में अपना समय व्यर्थ कर रहा हूँ, जबकि वास्तव में यह एक पूर्व-सैद्धांतिक क्षेत्र से उत्पन्न होती है। इस समय मैं किसी भी चीज़ में विश्वास नहीं करता और न ही मुझे कोई आशा है। जीवन को आकर्षक बनाने वाले सभी रूप और अभिव्यक्तियाँ मुझे अर्थहीन लगती हैं। मुझे न तो भविष्य की कोई भावना है और न ही अतीत की, जबकि वर्तमान मुझे ज़हर जैसा लगता है। मुझे नहीं पता कि मैं हताश हूँ या नहीं, क्योंकि आशा का अभाव अपने आप ही निराशा का कारण नहीं होता। मुझे कुछ भी कहा जा सकता है क्योंकि मेरे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है। मैंने सब कुछ खो दिया है! मेरे चारों ओर फूल खिल रहे हैं और पक्षी गा रहे हैं! मैं हर चीज़ से कितना दूर हो गया हूँ!

व्यक्तिगत और ब्रह्मांडीय एकाकीपन पर

अकेलेपन का अनुभव दो तरीकों से किया जा सकता है: दुनिया में अकेलेपन का एहसास करके या दुनिया के अकेलेपन को महसूस करके। व्यक्तिगत अकेलापन एक निजी नाटक है; कोई व्यक्ति असीम प्राकृतिक सुंदरता के बीच भी अकेला महसूस कर सकता है। दुनिया में एक बहिष्कृत, इसकी चकाचौंध या उदासी से बेपरवाह, जीत और हार में डूबा हुआ, आंतरिक नाटक में मग्न - यही एकाकी व्यक्ति का भाग्य है। दूसरी ओर, ब्रह्मांडीय अकेलेपन की भावना मनुष्य की व्यक्तिगत पीड़ा से उतनी नहीं, बल्कि दुनिया के अलगाव, वस्तुनिष्ठ शून्यता की जागरूकता से उत्पन्न होती है। ऐसा लगता है मानो इस दुनिया की सारी भव्यता एक पल में गायब हो जाए, और पीछे एक कब्रिस्तान की नीरस एकरसता रह जाए। कई लोग हिमनदी जैसी खामोशी में डूबी एक परित्यक्त दुनिया की कल्पना से ग्रस्त हैं, जहाँ गोधूलि बेला की हल्की रोशनी भी नहीं पहुँचती। कौन अधिक दुखी है? वह जो अपना अकेलापन महसूस करता है या वह जो दुनिया का अकेलापन महसूस करता है? यह बताना असंभव है, और वैसे भी, मुझे अकेलेपन के वर्गीकरण की चिंता क्यों करनी चाहिए? क्या यह पर्याप्त नहीं है कि कोई अकेला है?

मैं अपने बाद आने वालों के लिए यह लिखकर छोड़ रहा हूँ कि मैं किसी भी चीज़ में विश्वास नहीं करता और विस्मृति ही एकमात्र मुक्ति है। मैं सब कुछ भूल जाना चाहता हूँ, खुद को भूल जाना चाहता हूँ और दुनिया को भूल जाना चाहता हूँ। सच्ची बातें केवल आँसुओं से ही लिखी जाती हैं। लेकिन मेरे आँसू दुनिया को डुबो देंगे, जैसे मेरी भीतरी आग उसे राख कर देगी। मुझे किसी सहारे, प्रोत्साहन या सांत्वना की ज़रूरत नहीं है क्योंकि, यद्यपि मैं सबसे नीच मनुष्य हूँ, फिर भी मैं इतना शक्तिशाली, इतना कठोर, इतना क्रूर महसूस करता हूँ! क्योंकि मैं अकेला ऐसा मनुष्य हूँ जो बिना आशा के जीता है, वीरता और विरोधाभास की पराकाष्ठा। परम पागलपन! मुझे अपने अराजक और अनियंत्रित जुनून को विस्मृति में लगाना चाहिए, आत्मा और चेतना से मुक्ति पानी चाहिए। मुझे भी एक आशा है: पूर्ण विस्मृति की आशा। लेकिन क्या यह आशा है या निराशा? क्या यह भविष्य की सभी आशाओं का खंडन नहीं है? मैं जानना नहीं चाहता, यहाँ तक कि यह भी नहीं जानना चाहता कि मैं नहीं जानता। इतनी समस्याएँ, तर्क-वितर्क, परेशानियाँ क्यों? मृत्यु की चेतना क्यों? यह सब चिंतन और दार्शनिक चिंतन कब तक चलेगा?

सर्वनाश

मैं उस दिन यह देखना कितना चाहूँगा कि सभी लोग, युवा और वृद्ध, दुखी या प्रसन्न, पुरुष और स्त्री, विवाहित या अविवाहित, गंभीर या सतही, अपने घर और कार्यस्थल छोड़कर, अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को त्यागकर, सड़कों पर एकत्रित हों और कुछ भी न करें। उस क्षण, निरर्थक कार्यों के गुलाम, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए इस घोर भ्रम में जी रहे हैं कि वे मानवता की भलाई में योगदान दे रहे हैं, एक निष्फल और महत्वहीन जीवन की साधारणता, उस भारी बर्बादी का बदला लें जिसने कभी आध्यात्मिक रूपांतरण की अनुमति नहीं दी। उस क्षण, जब सभी आस्था और समर्पण खो जाएँ, साधारण जीवन के बंधन हमेशा के लिए टूट जाएँ। वे लोग जो चुपचाप पीड़ा सहते हैं, शिकायत की एक आह भी नहीं भरते, अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाएँ, एक विचित्र, भयावह, बेमेल शोर मचाएँ जो धरती को हिला दे। जल का प्रवाह तीव्र हो जाए और पर्वत भय से कांपने लगें, वृक्ष अपनी जड़ों को शाश्वत और भयावह निंदा की तरह प्रदर्शित करें, पक्षी कौवों की तरह कांव-कांव करें और जानवर भय से इधर-उधर भागकर थकावट से गिर पड़ें। आदर्शों को निरर्थक घोषित कर दिया जाए; विश्वासों को तुच्छ; कला को झूठ; और दर्शन को एक मजाक। सब कुछ चरमोत्कर्ष और प्रतिचरमोत्कर्ष हो। पृथ्वी के ढेले हवा में उछलें और हवा में बिखर जाएं; पौधे आकाश में विचित्र अरबी आकृतियाँ, भयानक और विकृत आकृतियाँ बना दें। जंगल की आग तेजी से फैले और एक भयानक शोर सब कुछ दबा दे ताकि छोटे से छोटा जानवर भी जान जाए कि अंत निकट है। सभी रूप निराकार हो जाएं, और अराजकता एक विशाल बवंडर में दुनिया की संरचना को निगल जाए। जबरदस्त हलचल और शोर, आतंक और विस्फोट हो, और फिर शाश्वत सन्नाटा और पूर्ण विस्मृति छा जाए। और उन अंतिम क्षणों में, मानवता ने अब तक जो कुछ भी महसूस किया है - आशा, पश्चाताप, प्रेम, निराशा और घृणा - वह इतनी शक्ति से विस्फोटित हो जाए कि कुछ भी शेष न बचे। क्या ऐसे क्षण शून्यता की विजय और अस्तित्वहीनता की अंतिम पराकाष्ठा नहीं होंगे?

दुख का एकाधिकार

मैं स्वयं से पूछता हूँ; ऐसा क्यों है कि केवल कुछ ही लोग कष्ट भोगते हैं? सामान्य लोगों में से केवल कुछ ही लोगों को क्यों यातना दी जाती है? कुछ धर्मों का मानना है कि ईश्वर हमें कष्टों के माध्यम से परख रहा है, या हम इसके द्वारा बुराई और अविश्वास का प्रायश्चित करते हैं। यदि ऐसा स्पष्टीकरण किसी धार्मिक व्यक्ति को संतुष्ट कर सकता है, तो यह उन लोगों के लिए पर्याप्त नहीं है जो यह समझते हैं कि कष्ट मनमाना और अन्यायपूर्ण है, क्योंकि अक्सर निर्दोष ही सबसे अधिक कष्ट भोगते हैं। कष्ट का कोई वैध औचित्य नहीं है। कष्टों का कोई मूल्य क्रम नहीं होता।

दुःख का सबसे रोचक पहलू दुःख सहने वाले का उसकी पूर्णता में विश्वास है। वह मानता है कि दुःख पर उसका एकाधिकार है। मुझे लगता है कि केवल मैं ही दुःख सहता हूँ, केवल मुझे ही दुःख सहने का अधिकार है, हालाँकि मैं यह भी जानता हूँ कि दुःख के ऐसे रूप भी हैं जो मेरे दुःख से कहीं अधिक भयानक हैं, हड्डियों से मांस के टुकड़े गिरना, आँखों के सामने शरीर का चूर-चूर हो जाना, राक्षसी, आपराधिक, शर्मनाक दुःख। मनुष्य स्वयं से पूछता है, यह कैसे संभव है, और यदि ऐसा है, तो कोई अभी भी अंत और ऐसी ही पुरानी कहावतों की बात कैसे कर सकता है?

दुःख मुझे इतना झकझोर देता है कि मेरा सारा साहस टूट जाता है। मैं निराश हो जाता हूँ क्योंकि मुझे समझ नहीं आता कि संसार में दुःख क्यों है। जीवन की पशुता, अतार्किकता और राक्षसी प्रवृत्ति में इसकी उत्पत्ति संसार में दुःख की उपस्थिति को समझाती है, लेकिन इसे उचित नहीं ठहराती। या शायद दुःख का भी जीवन से अधिक कोई औचित्य नहीं है। क्या जीवन आवश्यक था? या इसका तर्क केवल आंतरिक है? हमें अस्तित्वहीनता की अंतिम विजय को क्यों नहीं स्वीकारना चाहिए, इस विचार को क्यों नहीं स्वीकारना चाहिए कि अस्तित्व शून्यता की ओर और सत्ता अस्तित्वहीनता की ओर अग्रसर होती है? क्या अस्तित्वहीनता ही अंतिम परम वास्तविकता नहीं है? यह उतना ही चुनौतीपूर्ण विरोधाभास है जितना कि दुनिया का।

हालांकि पीड़ा मुझे प्रभावित करती है और कभी-कभी आनंद भी देती है, मैं कभी भी पीड़ा का बचाव नहीं लिख सकता, क्योंकि दीर्घकालिक पीड़ा - और सभी वास्तविक पीड़ा दीर्घकालिक होती है - अपने प्रारंभिक चरणों में भले ही शुद्ध करने वाली हो, लेकिन यह तर्कशक्ति को डगमगा देती है, इंद्रियों को सुस्त कर देती है और अंततः विनाश कर देती है। पीड़ा के प्रति सतही उत्साह केवल पीड़ा के कला प्रेमियों और शौकीनों द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है, जो इसे मनोरंजन समझ लेते हैं और यह नहीं समझते कि पीड़ा में विष, एक प्रचंड विनाशकारी ऊर्जा और एक समृद्ध उर्वरता दोनों निहित हैं, जिसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। पीड़ा पर एकाधिकार रखना अथाह खाई के ऊपर लटके रहने जैसा है। सभी पीड़ा एक अथाह खाई है।

जो लोग यह मानते हैं कि आत्महत्या जीवन की अभिव्यक्ति है, वे कायर हैं। वे अपनी लाचारी और साहस की कमी को छिपाने के लिए बहाने और स्पष्टीकरण गढ़ते हैं, क्योंकि वास्तव में आत्महत्या करने का कोई जानबूझकर या तर्कसंगत निर्णय नहीं हो सकता, बल्कि इसके पीछे केवल स्वाभाविक, गुप्त कारण होते हैं जो इसे पूर्वनिर्धारित करते हैं।

आत्महत्या करने वालों में मृत्यु के प्रति एक विकृत आकर्षण होता है, जिसका वे सचेत रूप से विरोध करने का प्रयास करते हैं, लेकिन जिसे वे पूरी तरह से दबा नहीं पाते। उनके भीतर जीवन इतना असंतुलित होता है कि कोई भी तर्क उसे ठीक नहीं कर सकता। कोई भी आत्महत्या तर्कसंगत नहीं होती, जो शून्यता और जीवन की निरर्थकता पर चिंतन के तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचती हो। यदि कोई यह तर्क दे कि प्राचीन काल में ऐसे बुद्धिमान पुरुष थे जिन्होंने एकांत में आत्महत्या की, तो मेरा उत्तर है कि वे ऐसा केवल इसलिए कर सके क्योंकि उन्होंने अपने भीतर जीवन का दम घोंट दिया था। मृत्यु और ऐसे ही अन्य खतरनाक विषयों पर चिंतन करना जीवन को घातक आघात पहुँचाने के समान है, क्योंकि इतने सारे पीड़ादायक प्रश्नों पर विचार करने वाला मन पहले से ही घायल हो चुका होता है। कोई भी बाहरी कारणों से आत्महत्या नहीं करता, केवल आंतरिक असंतुलन के कारण करता है। ऐसी ही प्रतिकूल परिस्थितियों में, कुछ उदासीन होते हैं, कुछ विचलित होते हैं, कुछ आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाते हैं। आत्महत्या के प्रति आसक्त होने के लिए, ऐसी आंतरिक पीड़ा होनी चाहिए कि स्वयं द्वारा बनाई गई सभी बाधाएँ टूट जाएँ और केवल एक विनाशकारी चक्कर, एक अजीब और शक्तिशाली बवंडर ही शेष रह जाए। आत्महत्या जीवन की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है? वे कहते हैं कि यह निराशाओं के कारण होता है, जिसका अर्थ है कि आपने जीवन की इच्छाएँ रखीं, आपकी कुछ अपेक्षाएँ थीं जो

पूरी नहीं हुईं। यह एक झूठा तर्क है! मानो आत्महत्या करने वाला व्यक्ति मरने से पहले जिया ही न हो, उसकी कोई आशाएँ, महत्वाकांक्षाएँ, दर्द न हो।

आत्महत्या के लिए यह विश्वास होना आवश्यक है कि आप अब और जी नहीं सकते, यह किसी सनक के कारण नहीं बल्कि एक भयानक आंतरिक त्रासदी के कारण होता है। क्या जीने में असमर्थता जीवन की अभिव्यक्ति है? कोई भी आत्महत्या प्रभावशाली होती है। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि लोग अब भी इसके लिए कारण और औचित्य क्यों खोजते हैं, इसे इतना बुरा क्यों मानते हैं। आत्महत्याओं को श्रेणीबद्ध करना और उन्हें महान और तुच्छ में विभाजित करना सबसे हास्यास्पद है। अपना जीवन लेना ही इतना प्रभावशाली है कि इसके पीछे के कारणों की खोज जैसी छोटी-मोटी बातों को रोका जा सकता है। मैं उन लोगों से घृणा करता हूँ जो प्रेम के लिए की गई आत्महत्याओं का उपहास करते हैं, क्योंकि वे यह नहीं समझते कि प्रेमी के लिए अपूर्ण प्रेम उसके अस्तित्व का खात्मा है, अर्थहीनता में एक विनाशकारी डुबकी है। अधूरी इच्छाएँ बड़ी असफलताओं से भी तेज़ी से मृत्यु की ओर ले जाती हैं। बड़ी असफलताएँ धीमी पीड़ा होती हैं, लेकिन अधूरी इच्छाएँ बिजली की तरह मार डालती हैं। मैं केवल दो प्रकार के लोगों की प्रशंसा करता हूँ: संभावित रूप से पागल और संभावित रूप से आत्महत्या करने वाला। केवल वे ही मुझे विस्मय से भर देते हैं, क्योंकि केवल वे ही महान भावनाओं और महान आध्यात्मिक रूपांतरणों में सक्षम हैं। जो लोग सकारात्मकता से जीते हैं, आत्मविश्वास से भरे होते हैं, अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य से संतुष्ट होते हैं, उनके प्रति मेरे मन में केवल सम्मान है।

मैं आत्महत्या क्यों नहीं कर लेता? क्योंकि मैं मृत्यु से उतना ही तंग आ चुका हूँ जितना जीवन से। मुझे धधकते हुए कड़ाहे में डाल देना चाहिए! मैं इस धरती पर क्यों हूँ? मुझे चीखने की, एक ऐसी भयानक चीख निकालने की ज़रूरत महसूस होती है जो दुनिया को भय से कांपने पर मजबूर कर दे। मैं बिजली की तरह हूँ जो दुनिया को आग में झुलसाने और अपने शून्यता की ज्वाला में सब कुछ निगल जाने को तैयार है। मैं इतिहास का सबसे भयानक प्राणी हूँ, प्रलय का दानव जो आग और अंधकार, आकांक्षाओं और निराशा से भरा है। मैं विकृत मुस्कान वाला दानव हूँ, जो भ्रम में सिमटता है और अनंत की ओर फैलता है, बढ़ता भी है और मरता भी है, शून्य की आशा और सर्वथा की निराशा के बीच आनंदपूर्वक लटका हुआ, सुगंध और विषों के बीच पला-बढ़ा, प्रेम और घृणा से ग्रस्त, प्रकाश और छाया से मारा गया। मेरा प्रतीक प्रकाश की मृत्यु और मृत्यु की ज्वाला है। चिंगारियाँ मुझमें मरती हैं और फिर गरज और बिजली बनकर पुनर्जन्म लेती हैं। अंधकार स्वयं मुझमें चमकता है।

पूर्ण गीतात्मकता

मैं विस्फोट करना चाहता हूँ, बहना चाहता हूँ, धूल में मिल जाना चाहता हूँ, और मेरा विघटन ही मेरी उत्कृष्ट कृति हो। मैं संसार में विलीन होना चाहता हूँ और संसार मुझमें परमानंद से विलीन हो जाए, और इस प्रकार हमारे उन्माद में एक प्रलयकारी स्वप्न उत्पन्न हो, जो सभी गोधूलि दर्शनों की तरह विचित्र और भव्य हो। हमारा स्वप्न रहस्यमय वैभव और विजयी परछाइयों को प्रकट करे, एक व्यापक प्रलय संसार को निगल जाए, और उसकी लपटें मृत्यु के समान जटिल और शून्यता के समान आकर्षक गोधूलि सुख उत्पन्न करें। गीतात्मकता केवल उन्माद के माध्यम से ही अभिव्यक्ति के अपने चरम रूप तक पहुँचती है। पूर्ण गीतात्मकता अंतिम क्षणों की गीतात्मकता है। इसमें, अभिव्यक्ति वास्तविकता बन जाती है, आंशिक, अल्प और अपुष्ट वस्तुनिष्ठता का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। न केवल आपकी बुद्धि और आपकी संवेदनशीलता, बल्कि आपका संपूर्ण अस्तित्व, आपका जीवन और आपका शरीर इसमें भाग लेते हैं। पूर्ण गीतात्मकता वह नियति है जिसने पूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। ऐसी गीतात्मकता कभी भी वस्तुनिष्ठ और पृथक रूप नहीं लेगी, क्योंकि यह आपका अपना मांस और रक्त है। यह केवल उन्हीं निर्णायक क्षणों में प्रकट होता है जब अनुभव अभिव्यक्ति बन जाता है। मृत्यु का एकमात्र रूप उसका अनुभव ही है। इस प्रकार, गीतात्मकता कर्म और वास्तविकता का मेल है, क्योंकि कर्म अब वास्तविकता की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि स्वयं वास्तविकता है। पूर्ण गीतात्मकता कविता और भावुकता से परे है, और नियति के तत्वमीमांसा के अधिक निकट है; सामान्यतः, यह सब कुछ मृत्यु के धरातल पर रखने की प्रवृत्ति रखती है। सभी महत्वपूर्ण चीजें मृत्यु के चिन्ह को धारण करती हैं।

पूर्ण भ्रम की अनुभूति! भेद करने, स्पष्ट करने, समझने या सराहना करने में असमर्थता! ऐसी अनुभूति किसी भी दार्शनिक को कवि बना सकती है, लेकिन सभी दार्शनिक इस अनुभूति को महत्वपूर्ण और स्थायी तीव्रता के साथ अनुभव नहीं करते, क्योंकि यदि वे ऐसा करते, तो वे अमूर्त और कठोर रूप से दर्शनशास्त्र का अध्ययन नहीं कर पाते। एक दार्शनिक का कवि बनना एक नाटक के समान है। आप अमूर्तताओं की दुनिया से भावनाओं के बवंडर में, आत्मा में उलझी सभी अद्भुत आकृतियों और रूपों में गिर जाते हैं। आत्मा के एक जटिल नाटक का अभिनेता, जिसमें एक ही समय में कामुक प्रत्याशा आध्यात्मिक चिंता से टकराती है, मृत्यु का भय मासूमियत की इच्छा से, पूर्ण त्याग विरोधाभासी वीरता से, निराशा गर्व से, पागलपन की आशंका गुमनामी की लालसा से, चीख मौन से, आकांक्षा शून्यता से टकराती है - वह व्यवस्थित रूप से दर्शनशास्त्र का अध्ययन कैसे जारी रख सकता है? कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्होंने अमूर्त रूपों की दुनिया से शुरुआत की और अंत में पूर्ण भ्रम में डूब गए। इसलिए वे केवल काव्यात्मक रूप से ही दार्शनिक चिंतन कर सकते हैं। पूर्ण भ्रम की स्थिति में, केवल पागलपन के सुख और पीड़ा ही मायने रखते हैं।

अनुग्रह का अर्थ

जीवन के प्रति हमारे अंध लगाव से ऊपर उठने के अनेक तरीके हैं, लेकिन केवल ईश्वर की कृपा से ही हम इसकी अतार्किक शक्तियों से नाता तोड़ पाते हैं; यह अकेला प्रयास व्यर्थ है, एक निस्वार्थ उत्साह है जो जीवन के भोलेपन को नष्ट नहीं करता। कृपा ऊपर की ओर उड़ने का आनंद है।

सुंदर गतियों की लहरें प्रकाश और निराकार उड़ान का संकेत देती हैं। उनमें हवा में फड़फड़ाते पंखों, मुस्कुराहटों और शुद्ध युवा सपनों की सहजता होती है। क्या नृत्य सुंदरता की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप नहीं है? सुंदरता में, जीवन शुद्ध जीवंतता का प्रवाह है, जो अपनी लय की सामंजस्यता को कभी नहीं तोड़ता। जीवन स्वप्न बन जाता है, निस्वार्थ खेल, अपनी सीमाओं में समाहित विस्तार। इस प्रकार यह स्वतंत्रता, सहज परित्याग और सूर्य के प्रकाश में गढ़े गए सपनों का एक सुखद भ्रम पैदा करता है। निराशा व्यक्तिवाद का तीव्र प्रकोप है, एक पीड़ादायक और अद्वितीय आंतरिककरण। दूसरी ओर, सुंदरता सामंजस्य और भोलेपन भरी पूर्णता की ओर ले जाती है, और सुंदर व्यक्ति कभी भी अकेलेपन और अलगाव की भावनाओं का अनुभव नहीं करता। सुंदरता एक मायावी अवस्था है जिसमें जीवन अपने विरोधाभासों को नकारता है और अपने राक्षसी द्वंद्ववाद से ऊपर उठता है, जिसमें विरोधाभास, नियति और अपरिवर्तनीयता की चेतना अस्थायी रूप से गायब हो जाती है। हल्की और हवादार, सुंदरता उदात्तीकरण करती है लेकिन कभी शुद्ध नहीं करती, क्योंकि यह कभी भी उदात्तता की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंचती। सामान्य अनुभव जीवन को कभी भी अत्यधिक तनाव या आंतरिक अंधकार की चरम सीमा तक नहीं ले जाते, न ही उसे मृत्यु के प्रतीक, गुरुत्वाकर्षण के नियम से मुक्त करते हैं। लेकिन कृपा, इस नियम से मुक्ति है, गुप्त प्रलोभनों से मुक्ति है, जीवन के राक्षसी चंगुलों से मुक्ति है, इसकी नकारात्मक प्रवृत्तियों से मुक्ति है। नकारात्मकता से ऊपर उठना कृपा का मूल गुण है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कृपा की अवस्था में जीवन अधिक प्रकाशमान, चमकीली किरणों से लिपटा हुआ प्रतीत होता है। सामंजस्य और सहजता के माध्यम से सभी नकारात्मकताओं और राक्षसों से ऊपर उठकर, कृपा धार्मिक आस्था की तुलना में कहीं अधिक तेजी से कल्याण की अवस्था तक पहुँचती है, जो इसे दुख और संघर्ष के माध्यम से प्राप्त करती है। इस संसार में कितनी विविधता है, क्योंकि कृपा के ठीक बगल में ही स्थायी भय है, अनेकों की पीड़ा है... जिसने पूर्ण भय, सार्वभौमिक चिंता का अनुभव नहीं किया है, वह संघर्ष, शरीर और मृत्यु के पागलपन को नहीं समझ सकता। जिसने केवल कृपा को जाना है, वह बीमारों की चिंता को नहीं समझ सकता। केवल बीमारी ही गंभीर और गहन भावनाओं को जन्म देती है। जो कुछ भी बीमारी से उत्पन्न नहीं होता, उसका केवल सौंदर्यपरक मूल्य होता है। बीमार होने का अर्थ है, स्वेच्छा से हो या अनिच्छा से, निराशा की ऊँचाइयों पर जीना। लेकिन ऐसी ऊँचाइयाँ गहरी खाईयों, भयावह कगारों को दर्शाती हैं - ऊँचाइयों पर जीने का अर्थ है खाई के निकट जीना। ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिए गिरना आवश्यक है।

लेकिन अनुग्रह संतोष की अवस्था है, यहाँ तक कि आनंद की भी, और यह न तो अथाह गहराई को जानता है और न ही पीड़ा को। स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक सुखी क्यों होती हैं? क्या यह इसलिए

नहीं है कि उनमें अनुग्रह और भोलापन पुरुषों की तुलना में अधिक पाया जाता है? वे भी रोग और असंतोष से प्रभावित होती हैं, लेकिन अनुग्रह उनमें प्रबल होता है। उनका भोला अनुग्रह उन्हें सतही संतुलन की अवस्था प्रदान करता है, जो कभी भी दुखद और खतरनाक तनावों की ओर नहीं ले जाता। स्त्रियाँ आध्यात्मिक स्तर पर सुरक्षित हैं क्योंकि उनमें जीवन और आत्मा के बीच का द्वैत पुरुषों की तुलना में कम तीव्र होता है। अस्तित्व की एक अनुग्रहपूर्ण भावना आध्यात्मिक रहस्यों, सत्य के दर्शन, या अंत के उस बोध की ओर नहीं ले जाती जो जीवन के हर क्षण को विषैला बना देता है। स्त्रियाँ रहस्य हैं: जितना अधिक आप उनके बारे में सोचते हैं, उतना ही कम आप उन्हें समझ पाते हैं। स्त्रियों के सामने व्यक्ति मौन हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे संसार के गुप्त सार के चिंतन में मौन हो जाता है। लेकिन जहाँ बाद वाला अथाह अनंत है, वहीं स्त्रियाँ सरल रहस्य हैं, दूसरे शब्दों में, शून्य हैं। जीवन से पूरी तरह अलग न होकर, स्त्री निराशा की चरम सीमा पर पहुँच चुके लोगों के लिए एक अस्थायी मुक्तिदाता है, क्योंकि उसके माध्यम से जीवन के अचेतन और निर्दोष सुखों की ओर लौटना अभी भी संभव है। कृपा ने यदि संसार को नहीं बचाया, तो उसकी स्त्रीयों को अवश्य बचाया है।

करुणा का व्यर्थ होना

जब दुनिया में इतने सारे अंधे, बहरे और पागल लोग हैं, तो कोई आदर्श कैसे रख सकता है? मैं उस प्रकाश का निर्दयतापूर्वक आनंद कैसे ले सकता हूँ जिसे कोई दूसरा देख नहीं सकता या उस ध्वनि का जिसे कोई दूसरा सुन नहीं सकता? मुझे प्रकाश का चोर जैसा महसूस होता है। क्या हमने अंधों से प्रकाश और बहरों से ध्वनि नहीं चुराई है? क्या हमारी स्पष्टता ही पागलों के अंधकार का कारण नहीं है? जब मैं इन बातों के बारे में सोचता हूँ, तो मेरा सारा साहस और इच्छाशक्ति खत्म हो जाती है, विचार व्यर्थ लगते हैं और करुणा निरर्थक। क्योंकि मैं खुद को इतना साधारण नहीं समझता कि किसी के लिए करुणा महसूस कर सकूँ। करुणा सतहीपन की निशानी है: टूटे हुए भाग्य और अथाह दुख या तो आपको चीखने पर मजबूर कर देते हैं या आपको पत्थर बना देते हैं। दया न केवल अप्रभावी है, बल्कि अपमानजनक भी है। और इसके अलावा, जब आप स्वयं अपमानजनक पीड़ा झेल रहे हों, तो आप दूसरे पर दया कैसे कर सकते हैं? करुणा इतनी आम इसलिए है क्योंकि यह आपको किसी चीज से नहीं बांधती! इस दुनिया में आज तक कोई भी दूसरे के दुख से नहीं मरा है। और जिसने कहा कि वह हमारे लिए मरा, वह मरा नहीं; उसे मार डाला गया।

आज भी कोई नहीं बता सकता कि क्या सही है और क्या गलत। भविष्य में भी यही हाल रहेगा। ऐसे भावों की सापेक्षता का कोई महत्व नहीं; इनका उपयोग न कर पाना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। मुझे नहीं पता कि क्या सही है और क्या गलत, फिर भी मैं कर्मों को अच्छे और बुरे में बाँटता हूँ। अगर कोई मुझसे पूछे कि मैं ऐसा क्यों करता हूँ, तो मैं जवाब नहीं दे पाऊँगा। मैं नैतिक मापदंडों का सहज रूप से उपयोग करता हूँ; बाद में, जब मैं पुनर्विचार करता हूँ, तो मुझे ऐसा करने का कोई औचित्य नहीं मिलता। नैतिकता इतनी जटिल और विरोधाभासी हो गई है क्योंकि इसके मूल्य अब जीवन के क्रम में स्वयं को स्थापित नहीं करते बल्कि एक पारलौकिक क्षेत्र में समाहित हो गए हैं जो जीवन की जीवंत और अतार्किक शक्तियों से बहुत कमजोर रूप से जुड़ा हुआ है। नैतिकता की नींव कैसे रखी जाए? मैं "अच्छा" शब्द से इतना तंग आ चुका हूँ; यह बहुत बासी और नीरस है! नैतिकता आपको अच्छाई की विजय के लिए काम करने को कहती है! और कैसे? अपने कर्तव्यों के निर्वाह, सम्मान और त्याग के माध्यम से। ये महज़ खोखले शब्द हैं: नंगी वास्तविकता के सामने नैतिक सिद्धांत व्यर्थ हैं, इतने कि मन में यह सवाल उठता है कि क्या इनके बिना जीवन बेहतर नहीं होगा? मैं एक ऐसी दुनिया चाहता हूँ जो नियमों और सिद्धांतों से मुक्त हो, एक ऐसी दुनिया जहाँ पूर्ण अनिश्चितता हो। मैं कल्पना और स्वप्न की दुनिया की कामना करता हूँ, जहाँ सही और गलत की बात का कोई अर्थ ही न रह जाए। जब वास्तविकता मूलतः तर्कहीन है, तो नियम क्यों बनाएँ, सही और गलत में भेद क्यों करें? नैतिकता को बचाया नहीं जा सकता; इसके विपरीत मानना मूर्खता है। फिर भी कुछ लोग मानते हैं कि इस संसार में सुख और पाप क्षणिक सुख हैं जो क्षणिक विजय प्राप्त करते हैं और केवल अच्छे कर्म ही शाश्वत होते हैं। वे यह दिखावा करते हैं कि इस संसार के दुख के अंत में अच्छाई और सद्गुण की विजय होगी, लेकिन वे यह समझने में विफल रहे हैं कि यदि शाश्वतता सतही सुखों को नष्ट कर देती है, तो वह सद्गुण, अच्छे कर्मों और नैतिक कार्यों को भी नष्ट कर देती है। शाश्वतता न तो अच्छाई की विजय कराती है और न ही बुराई की; यह सब कुछ नष्ट कर देती है। शाश्वतता के नाम पर एपिक्यूरियनों की निंदा करना मूर्खता है। सुख के बजाय दुख सहने से मुझे अमरता कैसे मिलेगी? विशुद्ध वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से, क्या एक व्यक्ति की पीड़ा और दूसरे के सुख में कोई महत्वपूर्ण अंतर है? चाहे आप दुख सहें या न सहें, शून्यता आपको हमेशा के लिए निगल जाएगी। अमरता का कोई वस्तुनिष्ठ मार्ग नहीं है, केवल समय के अनियमित क्षणों में अनुभव की जाने वाली एक व्यक्तिपरक अनुभूति है। मनुष्य द्वारा बनाई गई कोई भी चीज़ स्थायी नहीं है। जब अन्य भ्रम और भी सुंदर हैं, तो नैतिक भ्रमों के इस नशे में क्यों डूबे रहना? जो लोग अमरता के सामने नैतिक मुक्ति की बात करते हैं, वे नैतिक कर्म की समय में अनिश्चित प्रतिध्वनि, उसकी असीमित गूंज का उल्लेख करते हैं। इससे कम सत्य कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि तथाकथित गुणी पुरुष वास्तव में कायर हैं जो सुख में डूबे लोगों की तुलना में दुनिया की चेतना से तेज़ी से गायब हो जाएंगे। और फिर भी, अगर इसके विपरीत सत्य होता, तो क्या एक दर्जन या उससे अधिक वर्ष वास्तव में मायने रखते? कोई भी असंतुष्ट सुख जीवन की हानि है। मैं दुख के नाम पर सुख, अय्याशी और अतिभोग के विरुद्ध उपदेश देने वाला नहीं हूँ। साधारण लोग सुख के परिणामों के

बारे में बात करें: क्या दुख के परिणाम उससे भी अधिक गंभीर नहीं हैं? केवल साधारण लोग ही बुढ़ापे से मरना चाहते हैं। इसलिए कष्ट सहो, सुख का भरपूर आनंद लो, रोओ या हँसो, निराशा में चीखो या खुशी से, मृत्यु या प्रेम के गीत गाओ, क्योंकि कुछ भी स्थायी नहीं है! नैतिकता तो जीवन को केवल छूटे हुए अवसरों की एक लंबी श्रृंखला बना देती है!

क्षण और अनंत काल

शाश्वतता को केवल व्यक्तिपरक अनुभव के रूप में ही समझा जा सकता है। इसे वस्तुनिष्ठ रूप से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि मनुष्य की क्षणिक परिमितता उसे अनंतता की अवधारणा को समय में एक असीमित प्रक्रिया के रूप में समझने से रोकती है। इसलिए शाश्वतता का अनुभव व्यक्तिपरक भावना की तीव्रता पर निर्भर करता है, और शाश्वतता तक पहुँचने का मार्ग क्षणिक सीमाओं से परे जाना है। समय के विरुद्ध कड़ा संघर्ष करना आवश्यक है ताकि - क्षणों के निरंतर क्रम के भ्रम को दूर करने के बाद - व्यक्ति उस क्षण को पूरी तरह से जी सके जब वह शाश्वतता में प्रवेश करता है। क्षण शाश्वतता का द्वार कैसे बनता है? क्षण की अपर्याप्तता और सापेक्षता से अस्तित्व की भावना उत्पन्न होती है: क्षणिकता के प्रति गहरी जागरूकता रखने वाले लोग प्रत्येक क्षण को अगले क्षण के बारे में सोचते हुए जीते हैं। शाश्वतता तभी प्राप्त की जा सकती है जब कोई बंधन न हो, जब व्यक्ति क्षण को पूर्णतः और निरपेक्ष रूप से जी सके। शाश्वतता के प्रत्येक अनुभव में एक छलांग और एक रूपांतरण निहित होता है, और शाश्वत के आनंदमय चिंतन तक पहुँचने के लिए आवश्यक तनाव को सहन करने में सक्षम लोग बहुत कम होते हैं। चिंतन की अवधि नहीं, बल्कि उसकी तीव्रता मायने रखती है। सामान्य स्थिति में लौटने से इस समृद्ध अनुभव की गहराई कम नहीं होगी। दूसरी ओर, इस प्रकार के चिंतन की आवृत्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है: बार-बार दोहराने से ही शाश्वतता के सम्मोहन, उसके प्रकाशमान, अलौकिक परमानंद का अनुभव किया जा सकता है। क्षण को उसके अनुक्रमों से अलग करके, आप उसे व्यक्तिपरक रूप से एक निरपेक्ष मूल्य प्रदान करते हैं। शाश्वतता के दृष्टिकोण से, समय, अपने अनेक क्षणों के साथ, यदि अवास्तविक नहीं तो अप्रासंगिक है।

अनंतकाल में न तो आशाएँ होती हैं और न ही पश्चाताप। प्रत्येक क्षण को अपने आप में जीना, स्वाद और श्रेणी की सापेक्षता से मुक्ति पाना है, उस आंतरिक बंधन से मुक्त होना है जिसमें समय ने हमें कैद कर रखा है। समय के साथ-साथ जीने के बिना आंतरिक जीवन असंभव है: कालिकता के बिना जीवन अपना नाटकीय स्वरूप खो देता है। जीवन जितना तीव्र होता है, समय उतना ही अधिक प्रकट होता है। इसके अलावा, जीवन में असंख्य दिशाएँ, लक्ष्य और इरादे होते हैं जिन्हें केवल समय में ही प्राप्त किया जा सकता है। जीवन की बात करते समय, आप क्षणों की बात करते हैं; अनंतकाल की बात करते समय, क्षण की। अनंतकाल का अनुभव जीवन से रहित है, समय पर विजय है, जीवन के क्षणों पर विजय है। जिन लोगों में अनंतकाल की सहज चिंतनशील भावना होती है, जो कालिकता से अछूते होते हैं, जैसे कि कुछ पूर्वी संस्कृतियों में, वे समय पर विजय पाने के हमारे नाटकीय संघर्ष से अनजान होते हैं। फिर भी, अनंतकाल का चिंतन हमारे लिए विजयपूर्ण दृष्टियों और विचित्र आनंदों का स्रोत है। कोई भी व्यक्ति शाश्वतता से उस तरह प्रेम नहीं कर सकता जिस तरह वह किसी स्त्री, अपने भाग्य या अपनी निराशा से प्रेम करता है, क्योंकि शाश्वतता के प्रेम में खगोलीय प्रकाश की शांति का आकर्षण निहित है।

इतिहास और शाश्वतता

मुझे इतिहास में क्यों जीना चाहिए, या युग की सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं की चिंता क्यों करनी चाहिए? मैं संस्कृति और इतिहास से थक चुका हूँ; मैं अब इसके कष्टों और आकांक्षाओं को गले नहीं लगा सकता। हमें इतिहास से आगे निकलना होगा, और हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब अतीत, वर्तमान और भविष्य का महत्व समाप्त हो जाए, जब हम कहाँ और कब रहते हैं, यह बात मायने न रखे। क्या मैं आज इसलिए बेहतर स्थिति में हूँ क्योंकि मैं चार हज़ार साल पहले प्राचीन मिस्र में रहने की तुलना में बेहतर स्थिति में हूँ? उन लोगों पर दया करना मूर्खता है जो ऐसे समय में रहे जो हमें पसंद नहीं, जो ईसाई धर्म या आधुनिक विज्ञान की खोजों से अनजान थे। चूंकि जीवन-शैलियों का कोई क्रम नहीं है, इसलिए हर कोई सही भी है और कोई भी सही नहीं है। प्रत्येक ऐतिहासिक युग अपने आप में एक दुनिया है, जो अपने सिद्धांतों के प्रति निश्चित और बंद है, जब तक कि ऐतिहासिक जीवन की द्वंद्वात्मक गति एक नया, उतना ही सीमित और अपूर्ण रूप नहीं बना देती। मुझे आश्चर्य होता है कि कुछ लोग अतीत का अध्ययन करते हैं जबकि मुझे पूरा इतिहास निरर्थक और व्यर्थ लगता है। हमारे पूर्वजों के आदर्शों और विश्वासों में क्या रुचि है? मानव जाति की उपलब्धियाँ बेशक महान हो सकती हैं, लेकिन मुझे उन्हें जानने की कोई परवाह नहीं। मुझे शाश्वतता के चिंतन में अधिक शांति मिलती है। इस नश्वर संसार में, जिसका एक साँस के बराबर भी मूल्य नहीं है, एकमात्र सच्चा संबंध मनुष्य और शाश्वतता के बीच है, न कि मनुष्य और इतिहास के बीच। कोई भी क्षणिक सनक में इतिहास को नकार नहीं देता, बल्कि केवल भयावह और अप्रत्याशित त्रासदियों के प्रभाव में ही ऐसा होता है। ऐसा नकारना गहन दुख से उत्पन्न होता है, न कि केवल इतिहास पर अमूर्त चिंतन से। अब जब मैं इतिहास में भाग नहीं लेना चाहता और मानवता के अतीत को नकारता हूँ, तो एक असहनीय दुख, कल्पना से परे पीड़ादायक, मुझे जकड़ लेता है। क्या यह लंबे समय से सुप्त था और अभी इन विचारों से जागृत हुआ है? मेरे भीतर कड़वा स्वाद है।

मृत्यु का भय और शून्यता मेरे भीतर एक तीव्र विष की तरह जल रही है। मैं सुंदरता की बात कैसे कर सकता हूँ, और सौंदर्यपरक टिप्पणियाँ कैसे कर सकता हूँ, जब मैं इतना दुखी हूँ, मृत्यु के समान दुखी?

मैं इससे अधिक कुछ नहीं जानना चाहता। इतिहास को पार करके, व्यक्ति अतिचेतना प्राप्त करता है, जो शाश्वतता का एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह आपको उस क्षेत्र में ले जाता है जहाँ विरोधाभास और संदेह अपना अर्थ खो देते हैं, जहाँ आप जीवन और मृत्यु को भूल जाते हैं। मृत्यु का भय ही मनुष्य को शाश्वतता की खोज पर अग्रसर करता है: इसका एकमात्र लाभ विस्मृति है। लेकिन शाश्वतता से वापसी का क्या?

अब और पुरुष नहीं रहना

मुझे यह बात और भी पक्के तौर पर समझ आ रही है कि मनुष्य एक दुखी प्राणी है, जिसे त्याग दिया गया है और जीवन में अपना रास्ता खुद ढूंढने के लिए मजबूर किया गया है। प्रकृति ने उसके जैसा कुछ भी नहीं देखा है। वह अपनी तथाकथित स्वतंत्रता से प्राकृतिक अस्तित्व की कैद से हज़ार गुना अधिक पीड़ा भोगता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह अक्सर फूल या कोई और

पौधा बनने की इच्छा रखता है। जब आप उस बिंदु पर पहुँच जाते हैं जहाँ आप पूरी तरह से अचेतन होकर पौधे की तरह जीना चाहते हैं, तो आप मानवता से निराश हो चुके होते हैं। लेकिन मैं फूल के साथ अपना स्थान क्यों न बदल लूँ? मैं पहले से ही जानता हूँ कि मनुष्य होने का क्या अर्थ है, इतिहास में जीना, आदर्श रखना: इसमें मेरे लिए और क्या है? मनुष्य होना, बेशक, एक महान बात है! लेकिन यह मुख्य रूप से एक त्रासदी है क्योंकि मनुष्य होने का अर्थ है प्राकृतिक अस्तित्व से बिल्कुल अलग, अधिक जटिल और नाटकीय तरीके से जीना। जैसे-जैसे आप निर्जीव जगत की ओर बढ़ते हैं, जीवन का त्रासदीपूर्ण स्वरूप धीरे-धीरे लुप्त होता जाता है। मनुष्य संसार में त्रासदी और पीड़ा पर एकाधिकार करना चाहता है: इसीलिए उसके लिए मोक्ष एक ज्वलंत अनसुलझा प्रश्न है। मुझे पुरुष होने पर गर्व नहीं है, क्योंकि मैं भली-भांति जानता हूँ कि पुरुष होना क्या होता है। केवल वे लोग ही इस अवस्था का गहन अनुभव नहीं कर पाए हैं, जो इस पर गर्व करते हैं, क्योंकि वे पुरुष बनना चाहते हैं। उनकी खुशी स्वाभाविक है: मनुष्यों में कुछ ऐसे भी हैं जो पौधों या जानवरों से कुछ हद तक ही भिन्न हैं, और इसलिए मानवता की आकांक्षा रखते हैं। लेकिन जो लोग जानते हैं कि पुरुष होना क्या होता है, वे इसके अलावा कुछ भी बनना चाहते हैं। अगर मैं कर सकता, तो मैं हर दिन एक नया रूप चुनता, चाहे वह पौधा हो या जानवर; मैं एक-एक करके सभी फूल बनना चाहता: खरपतवार, काँटेदार झाड़ी या गुलाब; शाखाओं से घिरा एक उष्णकटिबंधीय वृक्ष, किनारे पर पड़ा समुद्री शैवाल या हवाओं से लहराता पहाड़; शिकारी पक्षी, कर्कश आवाज वाला पक्षी या मधुर गीत गाने वाला पक्षी; जंगल का जानवर या
पालतू जानवर। मुझे हर प्रजाति का जीवन जीने दो, बेफिक्र और निश्चिंत होकर, मुझे प्रकृति के संपूर्ण स्वरूप को आजमाने दो, मुझे सहजता से, विवेकपूर्ण ढंग से बदलने दो, मानो यह सबसे स्वाभाविक प्रक्रिया हो। मैं घोंसलों और गुफाओं की खोज करूंगा, सुनसान पहाड़ों और समुद्रों, पहाड़ियों और मैदानों में विचरण करूंगा! केवल इस प्रकार का एक ब्रह्मांडीय रोमांच, वनस्पति और जीव जगत में रूपांतरणों की एक श्रृंखला, मुझमें फिर से मनुष्य बनने की इच्छा को जागृत कर सकती है। यदि मनुष्य और पशु के बीच अंतर इस तथ्य में निहित है कि पशु केवल पशु ही हो सकता है जबकि मनुष्य गैर-मनुष्य भी हो सकता है - अर्थात्, स्वयं से कुछ भिन्न - तो मैं गैर-मनुष्य हूँ।

जादू और घातकता

जादुई संवेदनशीलता वाले लोगों के आनंद की कल्पना करना मेरे लिए कठिन है, वे लोग जो महसूस करते हैं कि सब कुछ उनके बस में है, जिनके लिए कोई बाधा नहीं है। जादुई संवेदनशीलता केवल आनंद की ओर ले जाती है; यह अस्तित्व की अटल और नियति को नहीं जानती। यह महसूस करना कि आप कुछ भी कर सकते हैं, कि आप परम सत्ता को अपनी हथेली में थामे हुए हैं, कि आपका उत्साह संसार के साथ एक है, कि आप ही संसार हैं, और उसका हृदय आप में प्रचंड रूप से धड़कता है - ये एक अकल्पनीय आनंद के तत्व हैं, जो जादुई संवेदनशीलता से संपन्न लोगों का अनन्य अधिकार है। जादू बीमारियों को नहीं जानता, या यदि जानता भी है, तो वे कभी लाइलाज नहीं होतीं। जादुई आशावाद हर चीज में समानताएं ढूंढता है। जादू जीवन के नकारात्मक, राक्षसी सार को नकारता है। इस प्रकार की संवेदनशीलता रखने वाला व्यक्ति दर्द, दुख, भाग्य, मृत्यु की विजय को नहीं समझ सकता। जादू के भ्रम अटल सत्य को नकारते हैं, मृत्यु की अनिवार्यता और सार्वभौमिकता को अस्वीकार करते हैं। व्यक्तिपरक दृष्टि से, जादू अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह परमानंद की अवस्था की ओर ले जाता है। इसमें मनुष्य ऐसे जीता है मानो उसे कभी मरना ही न हो। मृत्यु का प्रश्न केवल मृत्यु की व्यक्तिपरक चेतना से ही संबंधित है। जिनके पास यह चेतना नहीं है, उनके लिए यह बिल्कुल अप्रासंगिक है कि मृत्यु के माध्यम से वे शून्यता में विलीन हो जाएंगे। हम मृत्यु के निरंतर चिंतन के माध्यम से चेतना की पराकाष्ठा तक पहुंचते हैं।

वे लोग कहीं अधिक जटिल हैं जो नियति के प्रति सचेत हैं, जिनके लिए अनसुलझे और अपरिवर्तनीय सत्य ही वास्तविक हैं, जो प्रयास को व्यर्थ और पश्चाताप को असंभव समझते हैं। जीवन की सीमित अवस्था को पार करने में असमर्थता के प्रतीक के रूप में ही मूलभूत वास्तविकता प्रकट होती है। जादू छोटी और महत्वहीन चीजों के लिए उपयोगी है, लेकिन आध्यात्मिक वास्तविकता के सामने शक्तिहीन हो जाता है, जिसके लिए अधिकतर मौन की आवश्यकता होती है, जो जादुई संवेदनशीलता के बस में नहीं है। नियति के प्रति तीव्र चेतना के साथ जीना, जीवन की बड़ी समस्याओं के सामने अपनी ही लाचारी को महसूस करना, जिन्हें आप अस्तित्व में दुखद रूप से उलझे बिना उठा भी नहीं सकते, जीवन के मूल प्रश्न, यानी अगम्य और अज्ञेय अनंतता से सीधे जुड़ना है।

अकल्पनीय आनंद

आप यह दिखावा करते हैं कि निराशा और पीड़ा केवल प्रारंभिक चरण हैं, कि आदर्श रूप से इन पर विजय प्राप्त करना ही एकमात्र उपाय है, अन्यथा व्यक्ति मशीनी नहीं बन जाएगा। आप सोचते हैं कि आनंद ही मुक्ति का एकमात्र साधन है और आप अन्य सभी साधनों को तुच्छ समझते हैं? आप पीड़ा के प्रति आसक्ति को स्वार्थ कहते हैं और उदारता की भावनाएँ केवल आनंद में ही पाते हैं? आप हमें यह आनंद प्रदान करते हैं; लेकिन हम इसे बाहर से कैसे ग्रहण कर सकते हैं? जब तक यह हमारे आंतरिक संसाधनों से उत्पन्न नहीं होता, बाहरी सहायता बिल्कुल व्यर्थ है। जो लोग आनंदित नहीं हो सकते, उन्हें आनंद की सलाह देना कितना आसान है! पागलपन से ग्रस्त व्यक्ति आनंदित कैसे हो सकता है? क्या आनंद को बढ़ावा देने के इच्छुक सभी लोग यह समझते हैं कि पागलपन के करीब आने का भय और अनुभूति क्या होती है, पागलपन की पीड़ादायक पूर्वसूचना के साथ जीवन जीना, जिसमें मृत्यु की और भी अधिक निरंतर और निश्चित चेतना जुड़ जाती है? आनंद परमानंद की अवस्था हो सकती है, लेकिन इसे केवल स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारी पीड़ा का अंत हो सकता है, और हम अभी भी शांतिपूर्ण और निर्मल परमानंद प्राप्त करने के लिए नियत हो सकते हैं। क्या स्वर्ग के द्वार मेरे लिए हमेशा के लिए बंद कर दिए जाने चाहिए? मुझे अभी तक उनकी चाबी नहीं मिली है।

क्योंकि हम आनंदित नहीं हो सकते, इसलिए केवल पीड़ा और उन्मादपूर्ण उल्लास का मार्ग ही शेष है। आइए, हम पीड़ा को पूरी तरह से जिएं; आइए, हम अपनी आंतरिक त्रासदी को अंत तक पूर्णतः और उन्मादपूर्वक जिएं! हमारे पास केवल तीव्र पीड़ा का क्षण बचा है, और जब यह शांत होगी, तो केवल धुएं का एक हल्का सा गुबार रह जाएगा... हमारी आंतरिक अग्नि सब कुछ भस्म कर देगी। शुद्ध और उदार, प्रशंसा या औचित्य की आवश्यकता न होने के कारण, निराशा के सामने आनंद अनुचित है। यह स्वाभाविक रूप से निराश लोगों के लिए कुछ भी नहीं करता, जबकि दूसरों के लिए यह इतना मोहक है कि इसे किसी बहाने की आवश्यकता नहीं है। पूर्ण निराशा की जटिलता पूर्ण आनंद की जटिलता से कहीं अधिक है। क्या यही कारण है कि स्वर्ग के द्वार उन लोगों के लिए वर्जित हैं जिन्होंने आशा खो दी है?

पीड़ा की अस्पष्टता

ऐसा कोई नहीं है जो दर्द या बीमारी सहने के बाद, पछतावे की हल्की सी भी अनुभूति न करे। हालांकि वे ठीक होने की तीव्र इच्छा रखते हैं, लेकिन लंबे समय तक तीव्र पीड़ा सहने वाले लोग अपने सुधार में एक अपूरणीय हानि का अनुभव करते हैं। यदि दर्द आपके अस्तित्व का हिस्सा है, तो उस पर विजय पाना एक हानि के समान है और पश्चाताप का कारण बनता है। मैंने अपने जीवन के सर्वोत्तम पहलुओं के साथ-साथ जो कुछ भी खोया है, वह सब पीड़ा के कारण ही है। इसलिए मैं न तो पीड़ा को कोस सकता हूँ और न ही उससे प्रेम कर सकता हूँ। इसके प्रति मेरी भावना का वर्णन करना कठिन है; यह विचित्र, मायावी और गोधूलि बेला के रहस्यमय आकर्षण से परिपूर्ण है। पीड़ा के माध्यम से परमानंद एक भ्रम है, क्योंकि पूर्ण विनाश से बचने के लिए पीड़ा की नियति को स्वीकार करना आवश्यक है। जीवन के अंतिम संसाधन इसी भ्रम के नीचे

सुलगते रहते हैं। पीड़ा के प्रति एकमात्र रियायत संभावित पुनर्प्राप्ति के हमारे पश्चाताप में छिपी है, लेकिन यह इतनी अस्पष्ट और मायावी भावना है कि यह किसी की चेतना पर अपनी छाप नहीं छोड़ पाती। हर लुप्त होती पीड़ा अपने साथ एक अस्पष्ट बेचैनी लिए रहती है, मानो संतुलन की वापसी उस मोहक लेकिन पीड़ादायक दुनिया के रास्ते को रोक रही हो, जहाँ से अंतिम बार पीछे मुड़कर देखे बिना विदा नहीं हो सकते। जब दुख ने हमें सुंदरता का दर्शन नहीं कराया, तो फिर कौन सी रोशनी हमारी आँखों को आकर्षित करती है? क्या हम दुख के अंधकार से खिंचे चले जाते हैं?

सब कुछ धूल है

जीवन को नकारने के इतने सारे कारण हैं कि उन सबको गिनना असंभव है: निराशा, मृत्यु और अनंतता तो बस कुछ सबसे स्पष्ट कारण हैं। लेकिन उतने ही आंतरिक, व्यक्तिपरक कारण भी हैं, क्योंकि जीवन के मामले में, सत्य या असत्य कुछ नहीं होता, केवल हमारी सहज प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसे व्यक्तिपरकता कहा जा सकता है। इससे क्या फर्क पड़ता है? क्या गहन व्यक्तिपरकता ही सार्वभौमिकता प्राप्त करने का मार्ग नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे क्षण के माध्यम से अनंतता में प्रवेश किया जाता है? मनुष्य एकांत को कितना कम महत्व देते हैं! वे एकांत से उत्पन्न हर चीज की निष्फलता की निंदा करते हैं और केवल सामाजिक मूल्यों की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वे इस भ्रम में जीते हैं कि उन सभी ने इसके निर्माण में योगदान दिया है। वे सभी महान उपलब्धियों की आकांक्षा रखते हैं जिनके माध्यम से वे अमरता प्राप्त करने की आशा करते हैं। मानो वे धूल में न मिल जाएँ!

मैं हर चीज़ से असंतुष्ट हूँ। अगर मुझे भगवान बना दिया जाए, तो मैं तुरंत इस्तीफा दे दूँगा, और अगर यह दुनिया सिर्फ मैं ही हूँ, तो मैं खुद को टुकड़ों में बाँटकर, बिखर कर गायब हो जाऊँगा। ऐसे पल कैसे आ सकते हैं जब मुझे लगे कि मैं सब कुछ समझता हूँ?

प्रेम के एक रूप के रूप में उत्साह

निराशा के साये में जीने वालों से जीवन के कुछ शुद्ध, निर्मल रूप छिपे रहते हैं। जिनका जीवन बाधाओं से मुक्त होकर बहता है, वे आनंदमय संतोष की ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जिसमें संसार मनमोहक और प्रकाशमय प्रतीत होता है। उत्साह संसार पर एक मोहक प्रकाश डालता है; यह प्रेम का एक विशिष्ट रूप है, स्वयं को भूल जाने का एक तरीका है। प्रेम के इतने अनेक रूप, इतने पहलू और इतने विचलन हैं कि इसका कोई निश्चित रूप खोजना कठिन है। प्रेम का कोई भी विज्ञान सर्वप्रथम प्रेम की मूल अभिव्यक्ति की खोज करेगा। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष प्रेम, ईश्वर प्रेम, प्रकृति प्रेम या कला प्रेम की बात होती है, उसी प्रकार उत्साह को भी प्रेम का एक रूप माना जा सकता है। वह कौन सा रूप है जिससे अन्य सभी रूप उत्पन्न होते हैं? धर्मशास्त्री मानते हैं कि यह ईश्वर प्रेम है और अन्य सभी अभिव्यक्तियाँ इस मूलभूत प्रेम की फीकी परछाई मात्र हैं। सौंदर्यपरक प्रवृत्ति वाले सर्वेश्वरवादी मानते हैं कि यह प्रकृति प्रेम है, और शुद्ध सौंदर्यपरक कला प्रेम। इसी प्रकार, जीवविज्ञानियों के लिए यह स्नेह रहित शुद्ध कामुकता है और तत्वमीमांसाविदों के लिए यह सार्वभौमिक पहचान की भावना है। फिर भी, उनमें से कोई भी यह सिद्ध नहीं कर पाएगा कि जिस रूप का वे समर्थन करते हैं वह सबसे विशिष्ट है, क्योंकि इतिहास के दौरान वह रूप इतना बदल गया है कि आज कोई भी उसे निश्चित रूप से परिभाषित नहीं कर सकता।

मैं मानता हूँ कि प्रेम का सार पुरुष और स्त्री के बीच का प्रेम है, जिसमें न केवल यौन संबंध बल्कि भावों का एक समृद्ध जाल भी शामिल है। क्या कभी किसी ने ईश्वर, प्रकृति या कला के नाम पर आत्महत्या की है? प्रेम की तीव्रता तब बढ़ती है जब वह ठोस वास्तविकता से जुड़ जाता है; एक स्त्री से इसलिए प्रेम किया जाता है क्योंकि वह दुनिया में अद्वितीय और अलग है: प्रेम की चरम सीमा पर उसकी जगह कोई नहीं ले सकता। प्रेम के अन्य सभी रूप, यद्यपि स्वायत्तता की ओर अग्रसर होते हैं, इस मूल रूप में समाहित होते हैं। इसलिए आम तौर पर उत्साह को प्रेम के

दायरे में नहीं रखा जाता, जबकि वास्तव में इसकी जड़ें प्रेम के मूल तत्व में गहराई तक समाई होती हैं, भले ही इसमें मुक्तिदायक प्रवृत्तियाँ हों। उत्साही व्यक्ति में सार्वभौमिक ग्रहणशीलता होती है, वह ऊर्जा की अधिकता के साथ सब कुछ ग्रहण करने की क्षमता रखता है, जो केवल कार्य करने के आनंद के लिए ही खर्च होती है। उत्साही व्यक्ति किसी मानदंड की परवाह नहीं करता, कोई गणना नहीं करता; वह पूर्णतः समर्पण, बेचैनी और भक्ति से परिपूर्ण होता है। उपलब्धि का आनंद और दक्षता का परमानंद उस व्यक्ति के आवश्यक गुण हैं जिसके लिए जीवन उन ऊँचाइयों की ओर एक छलांग है जहाँ विनाशकारी शक्तियाँ अपनी नकारात्मक तीव्रता खो देती हैं। हम सभी में उत्साह के क्षण आते हैं, लेकिन वे इतने दुर्लभ होते हैं कि हमें स्थायी रूप से प्रभावित नहीं कर पाते। मैं उन लोगों की बात कर रहा हूँ जिनमें उत्साह सर्वोपरि होता है और जो उनके व्यक्तित्व की अभिन्न पहचान होते हैं। वे हार नहीं जानते, क्योंकि उन्हें लक्ष्य नहीं बल्कि पहल करने की क्षमता और कार्य करने का आनंद आकर्षित करता है; वे परिणामों पर विचार किए बिना ही कार्य में जुट जाते हैं, बस इसलिए कि वे खुद को रोक नहीं पाते। यद्यपि उत्साही व्यक्ति सफलता से पूरी तरह अछूता नहीं रहता, फिर भी वह न तो सफलता से प्रेरित होता है और न ही उसकी कमी से पराजित होता है। वह इस दुनिया में असफल होने वाला अंतिम व्यक्ति होता है। जीवन हमारी सोच से कहीं अधिक साधारण और खंडित है: क्या यही हमारे पतन, हमारी जीवंतता के क्षीण होने, हमारी आंतरिक लय के कठोर होने और हमारे जीवन प्रवाह के धीरे-धीरे धीमा होने का कारण नहीं है? यह ऊर्जा की बर्बादी हमारी ग्रहणशीलता और जीवन को उदारतापूर्वक और उत्साह से अपनाने की हमारी इच्छा को नष्ट कर देती है। केवल उत्साही व्यक्ति ही वृद्धावस्था तक अपनी ऊर्जा बचाए रखता है; बाकी सभी, यदि अधिकांश लोगों की तरह जन्म से ही मृत नहीं हैं, तो समय से पहले ही मर जाते हैं। सच्चा उत्साही कितना दुर्लभ है! क्या हम एक ऐसे संसार की कल्पना कर सकते हैं जिसमें हर कोई हर चीज से प्यार करे, उत्साही लोगों का संसार? ऐसी छवि स्वर्ग की छवि से भी कहीं अधिक आकर्षक है, क्योंकि इसकी उदारता स्वर्ग के किसी भी आयाम से कहीं अधिक है। उत्साही व्यक्ति की निरंतर पुनर्जन्म लेने की क्षमता उसे जीवन के राक्षसी प्रलोभनों, शून्यता के भय और पीड़ा के कष्टों से ऊपर उठा देती है। उसके जीवन में कोई दुखद पहलू नहीं है, क्योंकि उत्साह ही जीवन का एकमात्र ऐसा रूप है जो मृत्यु से पूरी तरह अछूता है। यहाँ तक कि अनुग्रह - जो उत्साह के समान है - में भी मृत्यु के प्रति यह अतार्किक अज्ञानता कम होती है। अनुग्रह उदासी से भरा आकर्षण है; उत्साह में ऐसा नहीं है। उत्साही लोगों के प्रति मेरी अपार प्रशंसा इस बात से उत्पन्न होती है कि मैं यह समझ नहीं पाता कि ऐसी दुनिया में ऐसे लोग कैसे हो सकते हैं जहाँ मृत्यु, शून्यता, उदासी और निराशा का साया मंडराता रहता है। ऐसे लोगों को देखकर आश्चर्य होता है जो कभी निराश नहीं होते। उत्साही व्यक्ति सफलता के प्रति उदासीन कैसे हो सकता है? वह केवल अतिरेक के बल पर ही कैसे कार्य कर सकता है? उत्साह में प्रेम किस प्रकार का विचित्र और विरोधाभासी रूप धारण करता है? प्रेम जितना तीव्र होता है, उतना ही व्यक्तिगत होता है। सच्चे और भावुक प्रेम करने वाले पुरुष एक ही समय में कई महिलाओं से प्रेम नहीं कर सकते: प्रेम जितना तीव्र होता है, उसका लक्ष्य उतना ही महत्वपूर्ण होता है। आइए एक ऐसे भावुक प्रेम की कल्पना करें जिसका कोई

लक्ष्य न हो, एक ऐसा पुरुष जिसके पास वह स्त्री न हो जिस पर वह अपना प्रेम केंद्रित कर सके: क्या यह प्रेम की परिपूर्णता के सिवा कुछ और होगा? क्या ऐसे पुरुष हैं जिनमें प्रेम करने की अपार क्षमता है, लेकिन जिन्होंने कभी इस आदिम, मौलिक तरीके से प्रेम नहीं किया? उत्साह एक अनिर्दिष्ट लक्ष्य वाला प्रेम है। दूसरों की ओर उन्मुख होने के बजाय, उत्साही प्रेम उदार कार्यों में स्वयं को भरपूर खर्च करता है, एक प्रकार की सार्वभौमिक ग्रहणशीलता के साथ।

उत्साह, कामुकता का श्रेष्ठ रूप है। प्रेम के सभी रूपों में, उत्साह कामुकता से सबसे अधिक मुक्त है, रहस्यवादी प्रेम की तुलना में कहीं अधिक, जो अपने यौन प्रतीकों को नहीं छोड़ सकता। इस प्रकार उत्साह उस चिंता से मुक्त रहता है जो कामुकता को मानवीय त्रासदी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए बाध्य करती है। उत्साही व्यक्ति सर्वथा समस्या-मुक्त होता है। वह कई चीजों को बिना समस्या-ग्रस्त व्यक्ति के कष्टदायक संदेहों और अराजक संवेदनशीलता को जाने ही समझ लेता है। समस्याग्रस्त व्यक्ति किसी भी समस्या का समाधान नहीं कर सकता, क्योंकि उसे कुछ भी संतुष्ट नहीं करता। आप उसमें न तो उत्साही व्यक्ति का निस्वार्थ प्रेम, न ही उसकी भोली अतार्किकता, और न ही प्रेम के शुद्धतम रूप का मनमोहक विरोधाभास पाएंगे। ज्ञान को पाप मानने की बाइबिल की धारणा अब तक की सबसे गहरी धारणा है। उत्साही व्यक्ति का उल्लास इस तथ्य के कारण है कि वह ज्ञान की त्रासदी से अनभिज्ञ है। इसे कहने में क्या हर्ज है? सच्चा ज्ञान सबसे गहरा अंधकार है। मैं इस दुनिया की सभी कष्टदायक समस्याओं को मधुर, आत्म-विरोध रहित भोलेपन से सहर्ष बदल लूंगा। आत्मा उत्थान नहीं करती; यह आपको विखंडित कर देती है। उत्साह में, अनुग्रह और जादू की तरह, आत्मा जीवन का विरोध नहीं करती। सुख का रहस्य इस अटूट एकता के मूल अविभाजन में निहित है। यदि आप उत्साही हैं, तो आप उस विष, द्वैत को नहीं जानते। जीवन आमतौर पर अज्ञेयवादी संघर्ष के तनावों और विरोधों के माध्यम से अपनी उर्वरता और उत्पादकता को बनाए रखता है। उत्साह इसे जीत लेता है, और त्रासदी रहित जीवन और कामुकता रहित प्रेम को प्राप्त कराता है।

प्रकाश और अंधकार

सभी दार्शनिक और ऐतिहासिक प्रणालियों की असत्यता का सबसे अच्छा उदाहरण प्राच्य और रहस्यवादी धर्मों में प्रकाश और अंधकार के द्वैतवाद की गलत व्याख्या है। कुछ लोगों का दावा है कि मनुष्य ने दिन और रात के नियमित चक्र को देखकर दिन को जीवन और रात को रहस्य और मृत्यु के समान मान लिया और प्रकाश एवं अंधकार को आध्यात्मिक सिद्धांतों का दर्जा दे दिया। यह व्याख्या स्वाभाविक तो है, लेकिन सभी बाहरी व्याख्याओं की तरह अपर्याप्त है। प्रकाश और अंधकार का प्रश्न परमानंद के प्रश्न से जुड़ा है। इनका द्वैतवाद केवल उसी व्यक्ति के लिए व्याख्यात्मक महत्व रखता है जो प्रकाश और अंधकार की शक्तियों के वश में होकर जुनून और बंधन दोनों का अनुभव कर चुका हो। परमानंद में परछाइयाँ और चिंगारियाँ एक विचित्र नृत्य में घुलमिल जाती हैं; यह रहस्यमयी अंधकार में क्षणभंगुर चमक का एक नाटकीय दृश्य बुनती है, पूर्ण अंधकार में प्रकाश की सभी बारीकियों के साथ खेलती है। फिर भी, यह भव्य प्रदर्शन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह तथ्य कि यह आपको बांधे रखता है और मोहित करता है। परमानंद की चरम सीमा वह अंतिम अनुभूति है, जिसमें प्रकाश और अंधकार के कारण आप स्वयं को मरता हुआ महसूस करते हैं। विशेष रूप से विचित्र तथ्य यह है कि परमानंद आसपास की वस्तुओं, संसार के परिचित रूपों को मिटा देता है, जब तक कि अंत में केवल छाया और प्रकाश का एक विशाल प्रक्षेपण ही शेष न रह जाए। यह समझाना कठिन है कि यह चयन और शुद्धिकरण कैसे होता है, ये अमूर्त छायाएँ हम पर इतना प्रभाव क्यों डालती हैं। किसी भी परमानंदमय उत्कर्ष में दैवीयता अंतर्निहित होती है। जब प्रकाश और अंधकार ही संसार के परमानंद के शेष अंश हैं, तो हम उन्हें निरपेक्ष स्वरूप देने से कैसे बच सकते हैं? पूर्वी धर्मों में, साथ ही रहस्यवाद के अन्य रूपों में, परमानंद की आवृत्ति हमारी परिकल्पना की सत्यता को सिद्ध करती है। निरपेक्षता स्वयं के भीतर है, बाहर नहीं, और परमानंद, आंतरिकता की यह तीव्र अनुभूति, केवल आंतरिक छायाओं और प्रकाश की झलकियाँ ही प्रकट करती है। इनके आगे, प्रकाश और दिन का आकर्षण शीघ्र ही फीका पड़ जाता है। परमानंद की अवस्था सार तत्व को इस हद तक समाहित कर लेती है कि यह आध्यात्मिक मतिभ्रम का आभास देती है। परमानंद के माध्यम से प्राप्त शुद्ध सार तत्व अमूर्त होते हैं, लेकिन उनकी अमूर्तता चक्कर और जुनून का कारण बनती है, जिससे आप उन्हें आध्यात्मिक सिद्धांतों में परिवर्तित किए बिना स्वयं को मुक्त नहीं कर सकते।

तो आपने बुढ़ापा, पीड़ा और मृत्यु देखी और खुद से कहा कि सुख एक भ्रम है और सुख चाहने वाले लोग चीजों की अस्थिरता को नहीं समझते। फिर आपने संसार का त्याग कर दिया, इस विश्वास के साथ कि कुछ भी स्थायी नहीं है। आपने घोषणा की, "मैं जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से मुक्ति पाने से पहले वापस नहीं लौटूँगा।" हर त्याग में बहुत अहंकार और पीड़ा होती है। चुपचाप पीछे हटने के बजाय, बिना किसी बड़े विद्रोह या घृणा का प्रदर्शन किए, आप दूसरों के अज्ञान और भ्रमों की ज़ोरदार और घमंडी निंदा करते हैं; आप उनके सुखों की निंदा करते हैं। वे तपस्वी, जिन्होंने जीवन का त्याग कर रेगिस्तान में शरण ली, इस बात से आश्वस्त थे कि उन्होंने सभी मानवीय कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर ली है। यह विश्वास कि उन्हें एक आत्मिक शाश्वतता तक पहुँच प्राप्त है, ने उन्हें पूर्ण मुक्ति का भ्रम दिया। फिर भी, सुख की उनकी निंदा और मानवता के प्रति उनकी अवमानना, वास्तव में स्वयं को मुक्त करने में उनकी असमर्थता को दर्शाती है। यदि मैं सबसे भयानक रेगिस्तान में चला जाऊँ, सब कुछ त्याग दूँ और पूर्ण एकांत में रहूँ, तब भी मैं कभी मनुष्यों और उनके सुखों से घृणा करने का सपना भी नहीं देखूँगा। चूंकि मैं त्याग और एकांत के द्वारा वास्तव में अमरता प्राप्त नहीं कर सकता, चूंकि मैं भी बाकियों की तरह मर जाऊंगा, तो मैं उन्हें क्यों तुच्छ समझूं, मैं अपने मार्ग को ही एकमात्र सच्चा मार्ग क्यों कहूं? सभी महान पैगंबरों में विवेक और मानवीय समझ का अभाव है। मैं पीड़ा, बुढ़ापा और मृत्यु का साक्षी हूं, और मैं जानता हूं कि इन पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती; लेकिन मैं अपने ज्ञान से दूसरों के आनंद को क्यों भंग करूं? दुख और उसकी अपरिहार्यता का बोध त्याग की ओर ले जाता है; फिर भी, यहां तक कि अगर मैं कुष्ठ रोगी भी बन जाऊं, तो भी मैं किसी दूसरे के आनंद की निंदा नहीं करूंगा। निंदा के हर कार्य में ईर्ष्या निहित होती है। बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म दुख भोगने वालों का प्रतिशोध और द्वेष है।

अगर मैं पीड़ा की चरम सीमा पर भी होता, तब भी मैं कामुकता की प्रशंसा और जश्न मनाता। मैं त्याग की सलाह नहीं देता, क्योंकि जीवन की अस्थिरता के विचार पर काबू पाना कुछ ही लोगों के बस की बात है। समाज में भी, और एकांत में भी, अस्थिरता अपना कड़वा स्वाद बरकरार रखती है। ज़रा सोचिए, भोले-भाले और नासमझ लोगों की तुलना में महान एकांतवासियों के भ्रम कितने बड़े होते हैं!

त्याग का विचार इतना कड़वा है कि यह कल्पना करना कठिन है कि मनुष्य ने कभी इसके बारे में सोचा भी कैसे होगा। जिसने निराशा के क्षण में कंपकंपी, अपरिहार्य परित्याग की अनुभूति, ब्रह्मांडीय मृत्यु और व्यक्तिगत शून्यता का अनुभव नहीं किया है, उसने त्याग की भयावह प्रारंभिक अवस्थाओं का अनुभव नहीं किया है।

त्याग? पर कैसे? कहाँ जाना चाहिए ताकि एक ही बार में सब कुछ त्याग न करना पड़े, जबकि सच्चा त्याग तो एक ही बार में होता है? हमारे देश और जलवायु में असली रेगिस्तान आसानी से नहीं मिलते; हमारे पास उपयुक्त वातावरण नहीं है। क्या चिलचिलाती रेगिस्तानी धूप में न रहकर, केवल अनंत काल के उस एक विचार से, हम सिर पर छत वाले संत बन जाएँगे? आत्महत्या के अलावा त्याग न कर पाना एक विशुद्ध आधुनिक नाटक है। अगर हमारा आंतरिक रेगिस्तान

साकार हो जाए, तो क्या उसकी विशालता हमें कुचल नहीं देगी? क्यों न हम फट जाएँ? क्या मुझमें दुनिया को हिला देने की ऊर्जा नहीं है, प्रकाश को मिटा देने का पागलपन नहीं है? क्या अराजकता ही मेरा एकमात्र आनंद नहीं है, और क्या वह उत्साह ही मेरा एकमात्र सुख नहीं है जो मेरे पतन का कारण बनेगा? क्या मेरी उड़ानें ही पतन नहीं हैं, और क्या मेरा विस्फोट ही मेरा प्रेम नहीं है? क्या मैं केवल आत्म-विनाश के माध्यम से ही प्रेम कर सकता हूँ? क्या ऐसा हो सकता है कि मुझे शुद्ध अवस्थाओं का ज्ञान बिल्कुल न हो? क्या मेरे प्रेम में इतना जहर हो सकता है? क्या मैंने मृत्यु से पर्याप्त संघर्ष नहीं किया है? क्या कामदेव भी मेरा शत्रु होना चाहिए? ऐसा क्यों होता है कि जब मेरे भीतर प्रेम का पुनर्जन्म होता है, तो मैं इतना भयभीत हो जाता हूँ कि अपने प्रेम को बढ़ने से रोकने के लिए पूरी दुनिया को निगलने को तैयार हो जाता हूँ? मेरी दुविधा यह है कि मैं प्रेम में निराश होना चाहता हूँ ताकि मुझे और अधिक पीड़ा सहने के कारण मिलें। केवल प्रेम ही आपको आपकी वास्तविक दुर्बलता का एहसास कराता है। क्या मृत्यु को देख चुका व्यक्ति अभी भी प्रेम कर सकता है? क्या वह प्रेम में मर सकता है?

अनिद्रा के आशीर्वाद

जैसे परमानंद आपको विशिष्ट और आकस्मिक चीज़ों से मुक्त कर देता है, केवल प्रकाश और अंधकार को शेष रखता है, वैसे ही अनिद्रा संसार की बहुलता और विविधता को नष्ट कर देती है, और आपको अपने निजी जुनूनों का वश में कर देती है। उन नींदहीन रातों में कैसी विचित्र जादुई धुनें उमड़ती हैं! उनके प्रवाहमय स्वर मोहक होते हैं, लेकिन इस मधुर प्रवाह में एक खेद का भाव होता है जो इसे परमानंद से कम कर देता है। किस प्रकार का खेद? यह कहना कठिन है, क्योंकि अनिद्रा इतनी जटिल है कि यह बताना मुश्किल है कि हानि क्या है। या शायद हानि अनंत है। जागती रातों में, एक विचार या भावना सर्वोपरि होती है। यह रात के रहस्यमय संगीत का स्रोत बन जाती है। इस प्रकार रूपांतरित होकर, जागती रातों के विचार इतने सौम्य हो जाते हैं कि मनुष्य की आत्मा में सार्वभौमिक चिंता की गहराई को झकझोर देते हैं। मृत्यु स्वयं, यद्यपि अभी भी भयावह है, रात में एक प्रकार की अगोचर पारदर्शिता, एक मायावी और संगीतमय चरित्र प्राप्त कर लेती है। फिर भी, इस सार्वभौमिक रात का दुख प्राच्य संगीत के दुख के समान है, जिसमें मृत्यु का रहस्य प्रेम के रहस्य से अधिक हावी होता है।

प्रेम के रूपांतरण पर

प्रेम के जन्म में अतार्किकता का प्रभुत्व होता है। पिघलने की अनुभूति भी मौजूद होती है, क्योंकि प्रेम एक प्रकार का घनिष्ठ मिलन है और पिघलने की व्यक्तिपरक अनुभूति, वैयक्तिकता की सभी बाधाओं के मिट जाने से बेहतर इसे कोई व्यक्त नहीं कर सकता। क्या प्रेम एक ही समय में विशिष्टता और सार्वभौमिकता नहीं है? सच्चा मिलन केवल एक व्यक्ति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। मैं किसी से प्रेम करता हूँ, लेकिन चूंकि वह सब कुछ का प्रतीक है, इसलिए मैं अनजाने में और सरलता से सब कुछ के सार का अनुभव करता हूँ। प्रेम की सार्वभौमिकता प्रेम के लक्ष्य की विशिष्टता को पूर्व निर्धारित करती है; व्यक्ति सार्वभौमिकता की एक खिड़की है। प्रेम में उत्कर्ष प्रेम की अतार्किकता के चरम तीव्रता तक बढ़ने से उत्पन्न होता है। सच्चा प्रेम एक ऐसी चोटी है जिसे कामुकता बौना नहीं कर सकती।

कामुकता के भी अपने अनूठे शिखर होते हैं। हालांकि कामुकता के बिना प्रेम की कल्पना नहीं की जा सकती, फिर भी प्रेम नामक यह विचित्र घटना कामुकता को हमारी चेतना के केंद्र से हटा देती है। अत्यधिक शुद्धिकरण के कारण, प्रेमिका को एक ऐसी दिव्यता और आत्मीयता का आभास होता है जो कामुकता को हाशिए पर धकेल देती है, भले ही वास्तव में नहीं, कम से कम व्यक्तिपरक रूप से। स्त्री-पुरुषों के बीच कोई आध्यात्मिक प्रेम नहीं होता, केवल शरीर का एक रूपांतरण होता है जिसके माध्यम से प्रेमिका स्वयं को अपने प्रेमी के साथ इतना समाहित कर लेती है कि वह आध्यात्मिकता का भ्रम पैदा कर देती है। तभी पिघलने की अनुभूति होती है: शरीर एक चरम ऐंठन में कांपता है, प्रतिरोध करना बंद कर देता है, आंतरिक अग्नि से जलता है, पिघलता और बहता है, अनियंत्रित लावा की तरह।

मनुष्य, अनिद्रा का शिकार प्राणी

जिस किसी ने भी कहा कि नींद आशा के बराबर है, उसे न केवल नींद बल्कि अनिद्रा के भयावह महत्व का भी गहरा अहसास था! अनिद्रा का महत्व इतना विशाल है कि मैं मनुष्य को वह प्राणी कहना चाहता हूँ जो सो नहीं सकता। जब अन्य प्राणी भी उतने ही तर्कसंगत हैं, तो उसे तर्कसंगत प्राणी क्यों कहा जाए? लेकिन संपूर्ण सृष्टि में ऐसा कोई दूसरा प्राणी नहीं है जो सोना चाहता हो फिर भी सो न पाता हो। नींद विस्मृति है: जीवन का नाटक, उसकी जटिलताएँ और जुनून पूरी तरह से गायब हो जाते हैं, और हर जागृति एक नई शुरुआत, एक नई आशा होती है। इस प्रकार जीवन एक सुखद निरंतरता, स्थायी पुनर्जन्म का भ्रम बनाए रखता है। दूसरी ओर, अनिद्रा अपूरणीय उदासी, निराशा और पीड़ा की भावना को जन्म देती है। स्वस्थ मनुष्य - वह प्राणी - अनिद्रा से बस थोड़ा-बहुत ही जूझता है: वह उन लोगों के बारे में कुछ नहीं जानता जो एक घंटे की अचेतन नींद के लिए अपना राज्य भी दे देंगे, जो बिस्तर को देखकर उतने ही भयभीत होते हैं जितने कि यातना के यंत्र को देखकर। अनिद्रा और निराशा के बीच गहरा संबंध है। आशा का अभाव नींद के अभाव के साथ आता है। स्वर्ग और नरक में अंतर: स्वर्ग में आप हमेशा सो सकते हैं, नरक में कभी नहीं। ईश्वर ने मनुष्य को नींद छीनकर और ज्ञान देकर दंडित किया। क्या नींद से वंचित रखना जेलों में दी जाने वाली सबसे क्रूर यातनाओं में से एक नहीं है? पागल लोग अनिद्रा से बहुत पीड़ित होते हैं; इसीलिए उनमें अवसाद, जीवन के प्रति अरुचि और आत्महत्या की प्रवृत्ति

होती है। क्या जागृत अवस्था में होने वाले मतिभ्रम में किसी अथाह खाई में गिरने की अनुभूति, पागलपन का ही एक रूप नहीं है? जो लोग पुलों से नदियों में या ऊंची छतों से फुटपाथ पर कूदकर आत्महत्या करते हैं, वे गिरने की अंधी इच्छा और अथाह गहराई के मोहक आकर्षण से प्रेरित होते होंगे।

मेरी आत्मा अराजकता है, यह कैसे संभव है? मुझमें सब कुछ समाहित है: खोजो और तुम्हें पता चल जाएगा। मैं संसार के आरंभ का जीवाश्म हूँ: इसके सभी तत्व पूरी तरह से क्रिस्टलीकृत नहीं हुए हैं, और प्रारंभिक अराजकता अभी भी झलकती है। मैं पूर्ण विरोधाभास हूँ, अंतर्विरोधों का चरम, तनाव की अंतिम सीमा; मुझमें सब कुछ संभव है, क्योंकि मैं वही हूँ जो सर्वोच्च क्षण में, पूर्ण शून्यता के सामने, हँसेगा।

सत्य, क्या शब्द है!

इच्छाओं को दबाकर मुक्ति पाने का विचार मानव मन की सबसे बड़ी मूर्खता है। जीवन को क्यों छोटा करना, क्यों उसे पूर्ण उदासीनता और स्वतंत्रता के भ्रम जैसे तुच्छ लाभ के लिए नष्ट करना? अपने भीतर जीवन को कुचलने के बाद तुम जीवन की बात करने की हिम्मत कैसे करते हो? मैं उस व्यक्ति का अधिक सम्मान करता हूँ जिसकी इच्छाएँ अधूरी हैं, जो प्रेम में दुखी और निराश है, बजाय उस ठंडे और अभिमानी दार्शनिक के। दार्शनिकों से भरी दुनिया, कितना भयावह नज़ारा! उन सबको मिटा देना चाहिए ताकि जीवन स्वाभाविक रूप से चलता रहे - अंधाधुंध और अतार्किक रूप से।

मुझे उन लोगों की बुद्धिमत्ता से घृणा है जो सत्य से विचलित नहीं होते, जो अपने मन, शरीर और रक्त की पीड़ा को महसूस नहीं करते। मुझे केवल जीवंत, स्वाभाविक सत्य ही पसंद हैं, जो हमारी चिंताओं से उत्पन्न होते हैं। जिनके विचार सजीव होते हैं, वे हमेशा सही होते हैं; उनके विरुद्ध कोई तर्क नहीं हो सकता। और यदि हो भी जाए, तो वह टिक नहीं सकता। मुझे आश्चर्य होता है कि आज भी कुछ लोग सत्य की खोज में लगे हुए हैं। क्या बुद्धिमान लोग अब तक यह नहीं समझ पाए हैं कि सत्य का अस्तित्व ही नहीं है?

ज्वालाओं की सुंदरता

ज्वालाओं की सुंदरता उनके विचित्र खेल में निहित है, जो सभी अनुपात और सामंजस्य से परे है। उनकी पारदर्शी लौ एक साथ अनुग्रह और त्रासदी, मासूमियत और निराशा, उदासी और कामुकता का प्रतीक है। उनकी जलती हुई पारदर्शिता में महान शुद्धिकरण की हल्की सी अनुभूति है। काश, अग्नि की वह दिव्य अनुभूति मुझे ऊपर उठा ले और ज्वालाओं के सागर में फेंक दे, जहाँ उनकी कोमल और कपटी लपटों में भस्म होकर मैं परमानंदमय मृत्यु प्राप्त कर लूँ। ज्वालाओं की सुंदरता भोर के प्रकाश के समान एक शुद्ध, उदात्त मृत्यु का भ्रम पैदा करती है। निराकार, ज्वालाओं में मृत्यु प्रकाश के जलने जैसी है, जैसे सुंदर पंख जल रहे हों। क्या ज्वालाओं में केवल तितलियाँ ही मरती हैं? उन तितलियों का क्या जो अपने भीतर की ज्वालाओं में भस्म हो जाती हैं?

ज्ञान की कमी

मुझे ज्ञानी पुरुष इसलिए नापसंद हैं क्योंकि वे आलसी, कायर और संशयवादी होते हैं। दार्शनिकों की समता, जो उन्हें सुख-दुख दोनों से उदासीन बना देती है, की तुलना में मुझे तीव्र वासना अधिक पसंद है। ज्ञानी पुरुष न तो वासना की त्रासदी को जानता है, न मृत्यु के भय को, न जोखिम और उत्साह को, न बर्बर, विचित्र या उदात्त वीरता को। वह कहावतों में बात करता है और सलाह देता है। वह न जीता है, न महसूस करता है, न इच्छा करता है, न किसी चीज की प्रतीक्षा करता है। वह जीवन की सभी विसंगतियों को समतल कर देता है और फिर उसके परिणामों को भुगतता है। असीम चिंता से ग्रस्त व्यक्ति कहीं अधिक जटिल होता है। ज्ञानी पुरुष का जीवन खाली और निष्फल होता है, क्योंकि वह विरोधाभास और निराशा से मुक्त होता है। असंगत विरोधाभासों से भरा जीवन कहीं अधिक समृद्ध और रचनात्मक होता है। ज्ञानी पुरुष का त्याग आंतरिक शून्य से उत्पन्न होता है, आंतरिक अग्नि से नहीं। मैं शून्य से मरने की बजाय अग्नि से मरना पसंद करूंगा।

अराजकता की वापसी

आइए, मूल अराजकता में लौट चलें! आइए, आदिम शोर, मूल भंवर की कल्पना करें! आइए, स्वयं को उस बवंडर में झोंक दें जो रूप की रचना से पहले अस्तित्व में था। आइए, हमारा अस्तित्व अग्निमय अथाह गहराई में प्रयास और उन्माद से कांप उठे! आइए, सब कुछ मिट जाए ताकि, भ्रम और असंतुलन से घिरे हुए, हम पूरी तरह से उस व्यापक उन्माद में शामिल हो जाएं, ब्रह्मांड से अराजकता की ओर, रूप से घूमते हुए चक्रों की ओर वापस लौटते हुए। संसार का विघटन विपरीत दिशा में सृजन है: एक प्रलय जो उलटी है लेकिन समान आवेगों से उत्पन्न हुई है। कोई भी व्यक्ति पहले प्रलयकारी चक्कर का अनुभव किए बिना अराजकता में लौटना नहीं चाहता।

प्रारंभिक अराजकता के भंवर में घसीटे जाने के विचार से मेरा भय और आनंद कितना तीव्र है, विरोधाभासी समरूपता का वह कोलाहल - अराजकता की अनूठी ज्यामिति, जो अर्थ या रूप से रहित है!

हर बवंडर में रूप धारण करने की क्षमता छिपी होती है, ठीक वैसे ही जैसे अराजकता में ब्रह्मांड की संभावना होती है। मुझे अनगिनत अवास्तविक, संभावित रूप प्राप्त हों! मेरे भीतर सब कुछ शुरुआत की सार्वभौमिक बेचैनी से स्पंदित हो, शून्यता से जागृति की अनुभूति हो!

मैं या तो इस दुनिया की शुरुआत में रह सकता हूँ या अंत में।

विडंबना और आत्म-विडंबना

जब आप सब कुछ नकार देते हैं और अस्तित्व के सभी रूपों को पूरी तरह से मिटा देते हैं, जब आपकी नकारात्मकता के मार्ग में कुछ भी जीवित नहीं रह सकता, तो हंसते या रोते हुए आप किसके पास जाएंगे, सिवाय अपने आप के? जब आप पूरी दुनिया का पतन देख लेते हैं, तो आपके अलावा गिरने के अलावा और कुछ नहीं बचता। विडंबना का अनंत स्वरूप जीवन की सभी बातों को निष्कलंक कर देता है। मैं यहां सतही गर्व और श्रेष्ठता की भावना से उत्पन्न सुरुचिपूर्ण, परिष्कृत विडंबना की बात नहीं कर रहा हूँ - वह विडंबना जिसका उपयोग कुछ लोग दुनिया से अपने अलगाव को दिखाने के लिए करते हैं - बल्कि निराशा की दुखद, कड़वी विडंबना की बात कर रहा हूँ। सच्ची विडंबना आंसुओं, कंपकंपी या यहां तक कि एक घिनौनी और आपराधिक मुस्कान की जगह ले लेती है। पीड़ित लोगों की विडंबना और आलसी, सतही लोगों की विडंबना में बहुत बड़ा अंतर होता है। पहले वालों की विडंबना निर्दोषता से जीने में पुरानी असमर्थता का संकेत है, जो जीवन शक्ति के नुकसान की भावना से जुड़ी है, जबकि बाद वालों को इस अपरिवर्तनीय नुकसान का कोई ज्ञान नहीं होता और वे इसे चेतना में प्रतिबिंबित नहीं करते। व्यंग्य एक आंतरिक उथल-पुथल, झुर्रियों के गहराने, सहज प्रेम, मानवीय जुड़ाव और समझ की कमी को दर्शाता है। यह एक छिपा हुआ तिरस्कार है, जो भोले-भाले, सहज भावों को तुच्छ समझता है, क्योंकि यह तर्कहीनता और भोलेपन से परे है। फिर भी, यह व्यंग्य भोले-भाले लोगों से ईर्ष्या करता है। अत्यधिक अभिमानी और इसलिए सादगी के प्रति अपनी प्रशंसा को खुले तौर पर प्रकट करने में असमर्थ, व्यंग्यी व्यक्ति, ईर्ष्यालु और विषैला, द्वेष से सिकुड़ जाता है। यह कड़वा, दुखद व्यंग्य मुझे हल्के-फुल्के, संशयवादी व्यंग्य से कहीं अधिक वास्तविक लगता है। यह तथ्य कि आत्म-व्यंग्य हमेशा दुखद और पीड़ादायक होता है, बहुत कुछ प्रकट करता है। आत्म-व्यंग्य आहों से बना होता है, मुस्कानों से नहीं, भले ही उसकी आहें दबी हुई हों। आत्म-व्यंग्य निराशा की अभिव्यक्ति है। तुमने दुनिया खो दी है; तुमने खुद को खो दिया है। अब से एक भयावह, जहरीली हंसी हर कदम पर आपके कार्यों को परेशान करती है, और मुस्कुराती हुई मासूमियत के खंडहरों के ऊपर एक पीड़ादायक मुस्कान का भयानक भूत उभरता है, जो आदिम मुखौटों से भी अधिक विकृत और मिस्र की मूर्तियों पर बनी मुस्कान से भी अधिक कठोर है।

गरीबी पर

गरीबी को मनुष्य का भाग्य मानकर, मैं अब किसी भी सुधारवादी सिद्धांत पर विश्वास नहीं कर सकता। ऐसे सभी सिद्धांत एक समान रूप से मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ हैं। पशुओं में गरीबी नहीं होती, क्योंकि वे अपने दम पर जीते हैं, ऊँच-नीच और शोषण से अनभिज्ञ होते हैं। यह घटना केवल मनुष्य में ही पाई जाती है, क्योंकि मनुष्य ने ही अपने समतुल्य प्राणियों को अपना दास बनाया है। केवल मनुष्य ही इतना आत्म-घृणा करने में सक्षम है।

इस संसार में सभी परोपकारी प्रयास केवल गरीबी को और अधिक उजागर करते हैं; वे इसे घोर उपेक्षा से भी अधिक भयानक और समझ से परे दिखाते हैं। गरीबी, खंडहरों की तरह, मानवता के अभाव से पीड़ा देती है और यह खेद उत्पन्न करती है कि मनुष्य उस चीज़ को बदलने के लिए तैयार नहीं है जिसे बदलना उनके बस में है। यह भलीभांति जानते हुए भी कि मनुष्य गरीबी को

समाप्त कर सकता है, आप फिर भी इसकी शाश्वतता से अवगत होते हैं और एक कड़वी चिंता से ग्रस्त होते हैं जिसमें मनुष्य अपने सभी तुच्छ महत्वहीनता में प्रकट होता है। सामाजिक जीवन में गरीबी मनुष्य की असीम आंतरिक गरीबी का एक धुंधला प्रतिबिंब मात्र है। जब भी मैं गरीबी के बारे में सोचता हूँ, जीने की इच्छा खो देता हूँ। मुझे अपनी कलम फेंक देनी चाहिए और झुग्गी-झोपड़ियों में चले जाना चाहिए, जहाँ मैं एक जहरीली किताब की तुलना में गरीबी को बेहतर और अधिक प्रभावी ढंग से दूर कर सकता हूँ। जब भी मैं मनुष्य की घोर गरीबी, उसके क्षय, उसके फैलते हुए गैंग्रीन के बारे में सोचता हूँ, मैं मृत्यु के अंधकार में डूब जाता हूँ। गरीबी से निपटने के लिए सिद्धांत और विचारधाराएँ गढ़ने के बजाय, मनुष्य, यह तर्कशील प्राणी, भाईचारे की भावना से अपने शरीर से कोट उतारकर दे दे। विश्व में गरीबी मनुष्य को किसी भी अन्य चीज से अधिक कमजोर करती है और निस्संदेह ऐसे अहंकारी प्राणी के पतन का कारण बनेगी। गरीबी के आगे तो मुझे संगीत से भी शर्म आती है। सामाजिक जीवन का सार अन्याय है। ऐसे में भला कोई सामाजिक या राजनीतिक सिद्धांत का समर्थन कैसे कर सकता है?

गरीबी जीवन में सब कुछ नष्ट कर देती है; यह उसे भयावह, घृणित बना देती है। अभिजात वर्ग की फीकी चमक के साथ-साथ गरीबी की फीकी चमक भी होती है: पहली, परिष्कार का परिणाम है, दूसरी, शव के मृत शरीर में समा जाने का, क्योंकि गरीबी आपको भूत बना देती है, जीवन को परछाईं बना देती है, एक ब्रह्मांडीय प्रलय के बचे हुए लोगों की तरह धुंधले प्राणी बना देती है। गरीबी की पीड़ा में शुद्धि का कोई अंश नहीं होता; यह सब घृणा, कड़वाहट और विकृत शरीर है। गरीबी न तो शुद्ध, देवदूत जैसी आत्मा को जन्म देती है और न ही निर्मल विनम्रता को, ठीक वैसे ही जैसे बीमारी नहीं देती; इसकी विनम्रता विषैली, दुष्ट और प्रतिशोधी होती है।

अन्याय के विरुद्ध सापेक्षिक विद्रोह संभव नहीं है। केवल शाश्वत विद्रोह ही संभव है, क्योंकि मानवीय दरिद्रता शाश्वत है।

क्रूस से पलायन

मुझे पैगंबर उतने ही नापसंद हैं जितने कि वे कट्टरपंथी जो अपने मिशन पर कभी संदेह नहीं करते। मैं पैगंबरों का मूल्य उनके संदेह करने की क्षमता और उनके स्पष्ट विचारों की आवृत्ति से मापता हूँ। संदेह ही उन्हें सही मायने में इंसान बनाता है, लेकिन उनका संदेह आम लोगों के संदेह से कहीं अधिक प्रभावशाली होता है। उनमें बाकी सब कुछ निरंकुशता, उपदेश और नैतिक शिक्षा के सिवा कुछ नहीं होता। वे दूसरों को सिखाना चाहते हैं, उन्हें मुक्ति दिलाना चाहते हैं, उन्हें सत्य दिखाना चाहते हैं, उनके भाग्य को बदलना चाहते हैं, मानो उनका सत्य दूसरों के सत्यों से श्रेष्ठ हो। केवल संदेह ही पैगंबरों को पागलों से अलग कर सकता है। लेकिन क्या उनके लिए संदेह करने में बहुत देर हो चुकी है? जिसने खुद को ईश्वर का पुत्र समझा, उसने भी अंतिम क्षण में ही संदेह किया। मसीह ने वास्तव में पर्वत पर नहीं, बल्कि क्रूस पर संदेह किया था। मुझे विश्वास है कि क्रूस पर यीशु ने गुमनाम लोगों के भाग्य से ईर्ष्या की होगी और यदि संभव होता, तो वे दुनिया के सबसे एकांत कोने में चले जाते, जहाँ कोई उनसे आशा या मुक्ति की भीख नहीं माँगता। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि वह रोमन सैनिकों के बीच अकेले हैं, उनसे विनती कर रहे हैं कि उन्हें सूली से उतार दें, कीलें निकाल दें और उन्हें ऐसी जगह जाने दें जहाँ मानवीय पीड़ा की गूँज उन तक न पहुँचे। ऐसा इसलिए नहीं कि वे अचानक अपने मिशन पर विश्वास करना छोड़ देते - वे इतने प्रबुद्ध थे कि संशयवादी हो ही नहीं सकते थे - बल्कि इसलिए कि दूसरों की मृत्यु स्वयं की मृत्यु से अधिक सहन करने योग्य होती है। यीशु ने सूली पर चढ़ना इसलिए सहा क्योंकि वे जानते थे कि उनके विचार केवल उनके स्वयं के बलिदान के माध्यम से ही विजयी हो सकते हैं।

लोग कहते हैं: हमें आप पर विश्वास तभी होगा जब आप अपना सब कुछ और खुद को भी त्याग देंगे। वे आपकी मृत्यु को आपके विश्वासों की प्रामाणिकता की गारंटी के रूप में चाहते हैं। वे खून से लिखी रचनाओं की प्रशंसा क्यों करते हैं? क्योंकि ऐसी रचनाएँ उन्हें किसी भी पीड़ा से बचाती हैं, जबकि साथ ही पीड़ा का भ्रम भी बनाए रखती हैं। वे आपकी पंक्तियों के पीछे खून और आँसू देखना चाहते हैं। भीड़ की प्रशंसा क्रूरतापूर्ण है।

यदि यीशु क्रूस पर न मरे होते, तो ईसाई धर्म की विजय न होती। मनुष्य मृत्यु को छोड़कर हर चीज़ पर संदेह करते हैं। उनके लिए मसीह की मृत्यु ईसाई सिद्धांतों की वैधता का अंतिम प्रमाण थी। यीशु आसानी से क्रूस से बच सकते थे या शैतान के वश में हो सकते थे! जिसने शैतान से समझौता नहीं किया है, उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, क्योंकि शैतान ईश्वर से भी अधिक जीवन का प्रतीक है। यदि मुझे कोई पछतावा है, तो वह यह है कि शैतान ने मुझे शायद ही कभी लुभाया हो... लेकिन फिर ईश्वर ने भी मुझसे प्रेम नहीं किया है। ईसाई अभी तक यह नहीं समझ पाए हैं कि ईश्वर उनसे उतना ही दूर है जितना वे स्वयं ईश्वर से हैं। मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकता हूँ कि ईश्वर उन मनुष्यों से ऊब गए होंगे जो केवल भीख मांगना जानते हैं, अपनी सृष्टि की तुच्छता से व्याकुल होंगे, स्वर्ग और पृथ्वी दोनों से समान रूप से घृणा करते होंगे। और मैं उन्हें शून्यता में उड़ते हुए देखता हूँ, जैसे यीशु क्रूस से बच निकले थे... क्या होता यदि रोमन सैनिकों ने यीशु की विनती सुन ली होती, उन्हें क्रूस से उतार लिया होता और उन्हें भागने दिया होता? वह निश्चित रूप से दुनिया के किसी अन्य हिस्से में प्रचार करने नहीं जाते, बल्कि केवल अकेले, लोगों की

सहानुभूति और आँसुओं के बिना मरने के लिए जाते। और अगर मान भी लें कि अपने अहंकार के कारण उन्होंने मुक्ति की भीख नहीं मांगी, तो भी मुझे यह मानना मुश्किल लगता है कि यह विचार उनके मन में नहीं बैठा होगा। उन्हें सचमुच विश्वास रहा होगा कि वे ईश्वर के पुत्र हैं। अपने इस विश्वास के बावजूद, अपने सर्वोच्च बलिदान के क्षण में उनके मन में संदेह या मृत्यु का भय अवश्य रहा होगा। क्रूस पर यीशु के जीवन में ऐसे क्षण आए होंगे जब, यदि उन्हें अपने ईश्वर के पुत्र होने पर संदेह नहीं भी हुआ, तो उन्हें इसका पछतावा जरूर हुआ होगा। उन्होंने अपनी मान्यताओं की विजय के लिए अनोखे ढंग से मृत्यु को स्वीकार किया।

यह संभव है कि यीशु उतने सरल थे जितना मैं उन्हें समझता हूँ, उनके मन में कम संदेह और कम पछतावे थे, क्योंकि उन्होंने अपने दिव्य मूल पर केवल अपनी मृत्यु के समय ही संदेह किया था। दूसरी ओर, हमारे मन में इतने संदेह और पछतावे हैं कि हममें से कोई भी यह सोचने की हिम्मत नहीं कर सकता कि वह ईश्वर का पुत्र है। मैं यीशु से उनके उपदेशों, उनकी नैतिकता, उनके विचारों और उनके विश्वास के लिए घृणा करता हूँ। मैं उनसे उनके संदेह और पछतावे के क्षणों के लिए प्रेम करता हूँ, जो उनके जीवन के एकमात्र सच्चे दुखद क्षण थे, हालाँकि वे न तो सबसे रोचक थे और न ही सबसे पीड़ादायक, क्योंकि यदि हमें उनके कष्टों से निर्णय लेना हो, तो उनसे पहले कितने लोग स्वयं को ईश्वर का पुत्र कहने के योग्य होते!

अनंतता का पंथ

अनंत की बात करते ही मुझे एक अजीब सा चक्कर आने लगता है, मानो बाहरी और आंतरिक दोनों तरह का। मानो अचानक एक सुव्यवस्थित जीवन को छोड़कर मैं एक बवंडर में कूद पड़ा हूँ और विचार की गति से अंतरिक्ष में विचरण करने लगा हूँ। मेरा मार्ग एक शाश्वत और अगम्य बिंदु की ओर बढ़ रहा है। जैसे-जैसे यह बिंदु अकल्पनीय दूरी में बढ़ता जाता है, बवंडर की चक्करदार गति और तेज़ होती जाती है। न तो चमकीली और न ही सुंदर, बल्कि उनमें ब्रह्मांडीय ज्वालाओं का जटिल पैटर्न है। दुनिया कांप रही है, थरथरा रही है, नरक जैसी पागलपन भरी गति से घूम रही है, मानो प्रलय निकट आ रहा हो। अंत के इस विचित्र चक्करदार अहसास के बिना अनंत का अर्थ समझना असंभव है। यही अनंत का विरोधाभास है: यह अंत की अनुभूति को और अधिक वास्तविक बना देता है, जबकि साथ ही साथ इसे और भी असंभव बना देता है, क्योंकि अनंत, समय और स्थान दोनों में, किसी भी चीज़ की ओर नहीं ले जाता। हम भविष्य में कुछ कैसे हासिल कर सकते हैं जब हमारे पीछे एक ऐसा अनंत काल है जिसमें कुछ भी हासिल नहीं हुआ? यदि संसार का कोई अर्थ होता, तो अब तक वह हमारे सामने प्रकट हो चुका होता और हम उसे जान चुके होते। मैं यह कैसे मान सकता हूँ कि वह भविष्य में प्रकट होगा, जबकि वह अभी तक प्रकट ही नहीं हुआ है? परन्तु संसार का कोई अर्थ नहीं है; मूलतः अतार्किक, वह अनंत है। अर्थ केवल एक सीमित संसार में ही संभव है, जहाँ कोई कुछ प्राप्त कर सकता है, जहाँ पतन को रोकने के लिए सीमाएँ हों, स्पष्ट संदर्भ बिंदु हों, जहाँ इतिहास प्रगति के सिद्धांत द्वारा परिकल्पित लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। अनंत किसी भी ओर नहीं ले जाता, क्योंकि वह पूरी तरह अस्थायी है। अनंत की तुलना में "सब कुछ" बहुत छोटा है। अनंत का अनुभव बिना चक्कर आए, एक गहन और अविस्मरणीय चिंता के बिना संभव नहीं है। जब सब कुछ समान रूप से अनंत है, तो चिंता से कैसे बचा जा सकता है?

अनंतता अर्थ की समस्या का कोई हल निकालना असंभव बना देती है। यह सोचकर मुझे राक्षसी आनंद मिलता है कि अनंतता के कारण संसार अर्थहीन है। आख़िरकार, "अर्थ" का क्या उपयोग है? क्या हम इसके बिना जी नहीं सकते? सार्वभौमिक अर्थहीनता परमानंदमय नशे और अतार्किकता के उन्माद को जन्म देती है। चूंकि संसार का कोई अर्थ नहीं है, तो चलो हम जी लें! निश्चित लक्ष्यों या सुलभ आदर्शों के बिना, चलो हम स्वयं को अनंतता के प्रचंड बवंडर में झोंक दें, अंतरिक्ष में इसके टेढ़े-मेढ़े मार्ग का अनुसरण करें, इसकी ज्वालाओं में जलें, इसके ब्रह्मांडीय पागलपन और पूर्ण अराजकता से प्रेम करें! इसके अर्थ को समझने के लिए व्यक्ति को अपने भीतर इस ब्रह्मांडीय अराजकता के बीज धारण करने होंगे। अनंतता में जीना, और साथ ही इस पर लंबे समय तक ध्यान करना, अराजकता और विद्रोह का सबसे भयावह पाठ है जो कोई भी सीख सकता है। अनंतता आपको आपके अस्तित्व की जड़ों तक झकझोर देती है, आपको अव्यवस्थित कर देती है, लेकिन यह आपको तुच्छ, आकस्मिक और महत्वहीन चीजों को भुला भी देती है।

कितना सौभाग्य है कि अपनी सारी आशाएँ खो देने के बाद भी हम अनंत में छलांग लगा सकते हैं, असीम में गोता लगा सकते हैं, और इसके बवंडर की सार्वभौमिक अराजकता में भाग ले

सकते हैं! इस निरंतर गति के पागलपन में बह जाना और अपनी मृत्यु से अधिक अपने पागलपन के बारे में सोचना, ब्रह्मांडीय बर्बरता और असीम उत्थान के सपने को साकार करना कितना सुखद है! इस बवंडर से हमारा बाहर निकलना क्रमिक विनाश न हो, बल्कि मूल बवंडर की अराजकता में हमारी पीड़ा को बनाए रखे। मृत्यु के एकांत में अनंत का दुख और नाटक एक बार फिर हमारे सामने आए, ताकि शून्यता में हमारा विलीन होना इस संसार के रहस्य और अर्थहीनता को बढ़ाने वाले प्रकाश के समान हो।

अनंतता के प्रमुख तत्वों में से एक है रूप का निषेध। परम अस्तित्व, अनंतता किसी भी निर्मित, स्थिर या पूर्ण चीज़ को नष्ट कर देती है। क्या संगीत वह कला नहीं है जो अनंतता को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करती है क्योंकि यह सभी रूपों को एक मनमोहक, अवर्णनीय तरलता में विलीन कर देती है? रूप हमेशा खंडित को पूर्ण करने की प्रवृत्ति रखता है और अपनी सामग्री को वैयक्तिकृत करके सार्वभौमिक और अनंत के परिप्रेक्ष्य को समाप्त कर देता है; इस प्रकार यह केवल जीवन की सामग्री को अराजकता और अव्यवस्था से मुक्त करने के लिए विद्यमान है। रूप मायावी हैं और उनकी क्षणभंगुरता से परे, सच्ची वास्तविकता एक तीव्र स्पंदन के रूप में प्रकट होती है। रूप के प्रति झुकाव परिमितता के प्रेम से आता है, सीमाओं का आकर्षण जो कभी भी आध्यात्मिक रहस्योद्घाटन को जन्म नहीं देगा। तत्वमीमांसा, संगीत की तरह, अनंतता के अनुभव से उत्पन्न होती है। दोनों ही ऊंचाइयों पर बढ़ते हैं और चक्कर पैदा करते हैं। मैंने हमेशा सोचा है कि इन क्षेत्रों में उत्कृष्ट कृतियाँ बनाने वाले सभी लोग पागल क्यों नहीं हो गए। संगीत किसी भी अन्य कला की तुलना में इतनी एकाग्रता की मांग करता है कि रचनात्मक क्षणों के बाद कोई भी आसानी से अपना मानसिक संतुलन खो सकता है। सभी महान संगीतकारों को अपनी रचनात्मक क्षमता के चरम पर या तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए या पागल हो जाना चाहिए। क्या अनंत की आकांक्षा रखने वाले सभी लोग पागलपन के रास्ते पर नहीं हैं? सामान्यता, असामान्यता, ये ऐसी धारणाएँ हैं जिनका अब कोई अर्थ नहीं रह गया है। आइए हम अनंत के आनंद में जिएं, आइए हम उस असीम से प्रेम करें, आइए हम रूपों को नष्ट करें और एकमात्र रूपहीन पंथ की स्थापना करें: अनंत का पंथ।

चूंकि मैं तुरंत नहीं मरूंगा, न ही अपनी मासूमियत वापस पाऊंगा, इसलिए हर दिन वही नीरस दिनचर्या दोहराना सरासर पागलपन है। नीरसता को हर कीमत पर दूर करना होगा और रूपांतरण का मार्ग प्रशस्त करना होगा। यह देखकर कितना दुख होता है कि लोग स्वयं को दरकिनार कर देते हैं, अपने भीतर के प्रकाश को जगाने के बजाय अपनी नियति की उपेक्षा करते हैं या अपने घोर अंधकार में डूबे रहते हैं! क्यों न दुख से वह सब कुछ निचोड़ लें जो उससे प्राप्त हो सकता है, क्यों न तब तक मुस्कुराएं जब तक हम उसके जीवन के मूल स्रोत तक न पहुंच जाएं? हम सबके पास हाथ हैं, फिर भी कोई भी उनके कोमल भावों के माध्यम से पूर्ण अभिव्यक्ति करने के बारे में नहीं सोचता। हम चित्रों में हाथों की प्रशंसा करते हैं, हम उनके अर्थ के बारे में बात करना पसंद करते हैं, लेकिन अगर उन्हें हमारी आंतरिक त्रासदी को व्यक्त करना हो, तो वे अकड़े और बेढंगे रह जाते हैं। एक प्रेत जैसा हाथ, एक अमूर्त प्रतिबिंब की तरह पारदर्शी, घबराया हुआ, तनावग्रस्त मानो अंतिम ऐंठन में हो...! या, अगर ऐसा नहीं है, तो एक भारी, धमकी भरा हाथ, क्रूर और कठोर! हाथों को हमें शब्दों या आहों, मुस्कान या प्रार्थना से कहीं अधिक बताना चाहिए। निरंतर रूपांतरण से उत्पन्न पूर्ण अभिव्यक्ति का वरदान हमें सूर्य से भी अधिक शक्तिशाली प्रकाश के केंद्र में बदल देगा, बशर्ते न केवल हमारे हाथ, बल्कि हमारा चेहरा और हमारी व्यक्तिगत पहचान से अंकित हर चीज इसमें भागीदार हो। कुछ लोगों की उपस्थिति दूसरों के लिए अतिउत्तेजना, सुस्ती या ज्ञान का स्रोत होती है। ऐसे लोग न तो शून्यता जानते हैं और न ही निरंतरता, बल्कि केवल उस मिलन को जानते हैं जिसके माध्यम से ऊंचाइयां समान रूप से सुखद और रोमांचक बन जाती हैं।

मेरे भीतर एक अजीब बेचैनी है, जो पछतावे की तरह बढ़ती और फैलती जा रही है, उदासी की तरह जड़ें जमा रही है। क्या यह मेरे अनिश्चित भविष्य का डर है, या मेरी अपनी चिंता का डर? मैं अपनी मृत्यु के डर से व्याकुल हूँ। क्या मैं इन सनक के साथ जी सकता हूँ? क्या यही सब जीवन है या एक बेतुका सपना? मेरे भीतर एक राक्षस की विकृत कल्पना जन्म ले रही है। इस संसार का राक्षसी स्वरूप मेरी चिंता में समाहित है - पछतावे, धुंधले सपने, उदासी और अवास्तविकता का मिश्रण। मैं धरती पर फूलों की सुगंध नहीं बिखेरूँगा, बल्कि किसी प्रलय के बाद धुआँ और धूल बिखेरूँगा!

दुख का बोझ

क्या मृत्यु के दुख के अलावा कोई और दुख होता है? बिलकुल नहीं, क्योंकि सच्चा दुख अंधकारमय, आकर्षणहीन और स्वप्नहीन होता है। उदासी में उदासी से कहीं अधिक थकावट होती है, और यह व्यक्ति को जीवन से घृणा और तीव्र अवसाद की ओर ले जाती है। दुख और पीड़ा में अंतर यह है कि दुख में आत्म-चिंतन हावी होता है, जबकि पीड़ा संवेदनाओं की घातक भौतिकता से बोझिल होती है। दोनों ही केवल मृत्यु की ओर ले जाते हैं, प्रेम या कामुक उत्कर्ष की ओर कभी नहीं। कामुकता का अर्थ है जीवन की गुप्त आवश्यकता में निर्बाध रूप से जीना, जो किसी भी कामुक अनुभव की मूलभूत निर्दोषता को देखते हुए, स्वतंत्रता का भ्रम पैदा करता है। दूसरी ओर, दुखी या पीड़ित होने का अर्थ है जीवन के प्रवाह में प्रत्यक्ष और स्वाभाविक रूप से भाग लेने में असमर्थ होना। दुख और पीड़ा दोनों ही हमारे लिए अस्तित्व को प्रकट करते हैं, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से हम वस्तुनिष्ठ जगत से अपने अलगाव की चेतना प्राप्त करते हैं, वह चिंता जो हमारे अस्तित्व को एक दुखद चरित्र प्रदान करती है।

काम के माध्यम से अवमूल्यन

आम तौर पर पुरुष इतना अधिक काम करते हैं कि वे अपना असली रूप खो बैठते हैं। काम एक अभिशाप है जिसे मनुष्य ने आनंद में बदल दिया है। काम के लिए काम करना, निष्फल प्रयास का आनंद लेना, यह सोचना कि अथक परिश्रम से आप स्वयं को पूर्ण कर सकते हैं - यह सब घृणित और समझ से परे है। निरंतर और बिना रुके काम करना व्यक्ति को सुस्त, तुच्छ और व्यक्तित्वहीन बना देता है। काम मनुष्य की रुचि को व्यक्तिपरक से वस्तुनिष्ठ क्षेत्र की ओर मोड़ देता है। परिणामस्वरूप, मनुष्य अब अपने भाग्य में रुचि नहीं रखता बल्कि तथ्यों और वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करता है। जो गतिविधि निरंतर रूपांतरण का साधन होनी चाहिए, वह बाह्यीकरण का, अपने आंतरिक स्व को त्यागने का साधन बन जाती है। आधुनिक दुनिया में, काम एक विशुद्ध बाहरी गतिविधि का प्रतीक है; मनुष्य अब इसके माध्यम से स्वयं का निर्माण नहीं करता, वह वस्तुओं का निर्माण करता है। हममें से प्रत्येक को एक करियर चुनना पड़ता है, एक निश्चित प्रकार का जीवन अपनाना पड़ता है जो शायद हमारे लिए उपयुक्त न हो, यह काम की आत्मा को सुस्त करने की प्रवृत्ति को दर्शाता है। मनुष्य काम को अपने अस्तित्व के लिए लाभकारी मानता है, लेकिन उसका उत्साह बुराई के प्रति उसकी प्रवृत्ति को प्रकट करता है। काम में मनुष्य स्वयं को भूल जाता है; फिर भी उसकी यह विस्मृति सरल और भोली नहीं है, बल्कि मूर्खता के समान है। काम के कारण मनुष्य विषय से वस्तु बन गया है; दूसरे शब्दों में, वह एक अपूर्ण प्राणी बन गया है जिसने अपने मूल को धोखा दिया है। स्वार्थ से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक विकास के लिए जीने के बजाय, मनुष्य बाहरी वास्तविकता का दयनीय, शक्तिहीन दास बन गया है। वे सब कहाँ चले गए; परमानंद, दृष्टि, उत्साह? बुराई का परम उन्माद या सच्चा आनंद कहाँ है? काम में मिलने वाला नकारात्मक आनंद दैनिक जीवन की दरिद्रता और तुच्छता, उसकी छोटी सोच का हिस्सा है। इस व्यर्थ काम को छोड़कर नए सिरे से शुरुआत क्यों न करें, वही व्यर्थ गलती दोहराए बिना? क्या शाश्वतता की व्यक्तिपरक चेतना पर्याप्त नहीं है? यह शाश्वतता की भावना ही है जिसे काम की उन्मत्त गतिविधि और भय ने हमारे भीतर नष्ट कर दिया है। काम शाश्वतता का निषेध है। हम सांसारिक क्षेत्र में जितना अधिक सामान अर्जित करते हैं, हमारा बाहरी काम उतना ही तीव्र होता जाता है, और शाश्वतता उतनी ही कम सुलभ और दूर होती जाती है। इसलिए सक्रिय और ऊर्जावान लोगों का दृष्टिकोण सीमित होता है, उनके विचार और कार्य नीरस होते हैं। मैं काम की तुलना निष्क्रिय चिंतन या धुंधली कल्पना से नहीं कर रहा हूँ, बल्कि एक अवास्तविक रूपांतरण से कर रहा हूँ; फिर भी, मैं असहनीय, भयभीत करने वाली सक्रियता की तुलना में एक बुद्धिमान और सजग आलस्य को प्राथमिकता देता हूँ। आधुनिक दुनिया को जगाने के लिए, आलस्य की प्रशंसा करनी चाहिए। आलसी व्यक्ति में सक्रिय व्यक्ति की तुलना में आध्यात्मिक वास्तविकता की कहीं अधिक गहरी समझ होती है।

मैं सुदूर दूरियों से आकर्षित हूँ, उस विशाल शून्य से जो मैं संसार पर प्रकट करता हूँ। मेरे भीतर एक खालीपन का भाव बढ़ता है; यह एक हल्के और अगोचर द्रव की तरह मेरे शरीर में समा जाता है। अनंत की ओर बढ़ते हुए, मैं उन सबसे विरोधाभासी भावनाओं की रहस्यमय उपस्थिति का अनुभव करता हूँ जो किसी मानव आत्मा में निवास करती हैं। मैं एक ही समय में प्रसन्न और

दुखी, उत्साहित और निराश, सबसे विरोधाभासी सामंजस्य में सुख और निराशा दोनों से अभिभूत हूँ। मैं इतना प्रसन्न और फिर भी इतना दुखी हूँ कि मेरे आँसू एक साथ स्वर्ग और पृथ्वी दोनों को प्रतिबिंबित करते हैं। केवल अपने दुख के आनंद के लिए ही सही, काश इस पृथ्वी पर मृत्यु न होती।

अंत की भावना

मैं केवल अंत के दुख और आनंद के बारे में ही बात कर सकता हूँ। मुझे केवल वही पसंद है जो बिना किसी संकोच या समझौते के प्रकट होता है; यह आपको हृदय विदारक दुख की उथल-पुथल, अंतिम क्षणों के नशे और उत्साह के अलावा कहीं और नहीं मिलेगा। क्या सब कुछ अंतिम नहीं है? शून्यता की चिंता क्या है, यदि यह हमारे अंतिम दुख का विकृत आनंद, शून्यता की शाश्वतता और अस्तित्व की क्षणभंगुरता के प्रति हमारा उदात्त प्रेम नहीं है? क्या वास्तव में हमारे लिए अस्तित्व का अर्थ निर्वासन है, और शून्यता का अर्थ घर?

मुझे अपने आप से संघर्ष करना होगा, अपने भाग्य पर क्रोधित होना होगा, अपने रूपांतरण के सभी प्रतिरोधों को नष्ट करना होगा; केवल प्रकाश और अंधकार के लिए मेरी इच्छा ही शेष रहे! मेरा प्रत्येक कर्म या तो विजय हो या पतन, पलायन हो या विफलता! जीवन मुझमें बिजली की गति से उत्पन्न हो और समाप्त हो! सामान्य जीवन की तुच्छता और तर्कशीलता मेरे आंतरिक उथल-पुथल के सुखों और पीड़ाओं को, मेरे अंतिम निराशा और आनंद के दुखद सुखों को नष्ट न करे!

अत्यधिक शारीरिक तनाव के क्षणों से बच निकलना कोई गुण नहीं, बल्कि मूर्खता की निशानी है। क्या जीवित रहना, केवल अस्तित्व की नीरसता में लौटने के लिए? शून्यता के अनुभव और यौन सुख की चरम सीमा के बाद जीवित रहना उतना ही अर्थहीन है। मैं समझ नहीं पाता कि लोग चरम सुख के दौरान आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते, वे जीवित रहने को सामान्य और अश्लील क्यों नहीं समझते। ऐसा तीव्र, भले ही क्षणिक कंपन हमें पल भर में राख कर देना चाहिए। लेकिन अगर यह हमें नहीं मारता, तो हमें खुद को मार लेना चाहिए... मृत्यु के कई प्रकार हैं। फिर भी किसी में यौन आत्महत्या का प्रयास करने का साहस या मौलिकता नहीं है, एक ऐसी मृत्यु जो अन्य मृत्युओं से कम पूर्ण नहीं है, लेकिन जिसमें शून्यता की ओर यात्रा आनंद की ऊँचाइयों से होती है। इस मार्ग को क्यों न अपनाया जाए? यौन सुख की विस्मृति में कड़वी स्पष्टता की एक झलक ही यौन मृत्यु को मात्र भ्रम न रहने देने के लिए पर्याप्त होगी।

जब मनुष्य साधारण जीवन की नीरसता और उबाऊपन को सहन नहीं कर पाता, तो उसे परम आनंद के प्रत्येक अनुभव में आत्महत्या करने का अवसर मिलता है। ऐसी असाधारण आनंदमय अवस्थाओं से बच पाना असंभव हो जाता है और यही अस्तित्व का नाश कर देता है। तब किसी को भी इस बात पर संदेह नहीं रहेगा कि कुछ संगीतमय धुनें सुनने या किसी अनोखे परिदृश्य को निहारने के बाद मृत्यु की कामना करना संभव है।

जीवन से वंचित पशु की तरह, मनुष्य की स्थिति दयनीय है, क्योंकि उसे जीवन के सरल मूल्यों में भी संतुष्टि नहीं मिलती। पशुओं के लिए जीवन ही सब कुछ है; मनुष्य के लिए जीवन एक प्रश्नचिह्न है। एक ऐसा प्रश्नचिह्न जिसका कोई हल नहीं, क्योंकि मनुष्य ने न कभी कोई उत्तर पाया है, न कभी पाएगा। जीवन का न केवल कोई अर्थ नहीं है; बल्कि इसका कभी कोई अर्थ हो ही नहीं सकता।

पीड़ा का शैतानी सिद्धांत

अगर इस धरती पर खुश लोग हैं, तो वे खुलकर सामने आकर अपनी खुशी क्यों नहीं जाहिर करते, सड़कों पर अपनी खुशी का ऐलान क्यों नहीं करते? इतना संकोच और संयम क्यों? अगर मैं हमेशा खुश, शांत और संतुष्ट रहता, तो मैं इसे अपने अंदर दबाकर नहीं रखता। मैं इसे उदारतापूर्वक दूसरों के साथ बांटता। मैं अपने अंदर की उस उमंग भरी ऊर्जा में बह जाता जो मुझे जीवंत बनाती है।

यदि सुख है, तो उसे साझा करना और संप्रेषित करना आवश्यक है। लेकिन शायद सच्चे सुखी लोग अपने सुख से अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे में हम उन्हें अपनी चेतना का कुछ अंश देकर उनके अनंत अचेतन का कुछ अंश प्राप्त कर सकते हैं। दुख में तो केवल आँसू और चीखें ही क्यों होती हैं, और सुख में केवल कंपकंपी ही क्यों? यदि मनुष्य अपने सुखों के प्रति उतना ही सजग होता जितना वह अपने दुखों के प्रति होता है, तो उसे सुखों का बदला चुकाने की आवश्यकता ही न पड़ती। क्या तब संसार में सुख और दुख का वितरण अधिक न्यायसंगत नहीं होता?

यदि दर्द को आसानी से भुलाया नहीं जा सकता, तो इसका कारण यही है कि यह चेतना में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बहुत कुछ भूलना केवल उन्हीं लोगों को पड़ता है जिन्होंने बहुत कष्ट सहा हो। सामान्य लोग ही ऐसे होते हैं जिनके पास भूलने के लिए कुछ नहीं होता।

दर्द का अपना एक स्वरूप होता है, जबकि सुख क्षणभंगुर होकर धुंधली आकृतियों की तरह गायब हो जाते हैं। सुख और उससे जुड़ी परिस्थितियों को याद रखना कठिन होता है, जबकि दर्द की याद गहरी होती है और उससे जुड़ी परिस्थितियाँ उसे और भी मार्मिक बना देती हैं। सुख को पूरी तरह भुलाया नहीं जा सकता - सुख का आनंद लेने वाला व्यक्ति बुढ़ापे में थोड़ा-बहुत ही विचलित हो पाता है, जबकि पीड़ित व्यक्ति ज़्यादा से ज़्यादा कड़वी स्वीकृति तक ही पहुँच पाता है। यह कहना कि सुख स्वार्थी होते हैं और मनुष्य को जीवन से अलग कर देते हैं, उतना ही शर्मनाक पूर्वाग्रह है जितना कि यह कहना कि दर्द हमें जीवन के करीब लाते हैं। ऐसे पूर्वाग्रहों की निरर्थकता घृणित है। इनकी किताबी उत्पत्ति सभी पुस्तकालयों पर लांछन लगाती है और वास्तविक अनुभव के महत्व को सिद्ध करती है।

दुख को प्रेम का मार्ग मानने की ईसाई धारणा, भले ही यह प्रेम का मुख्य द्वार न हो, मूलतः गलत है। लेकिन क्या ईसाई धर्म सिर्फ इसी बिंदु पर गलत नहीं है? दुख को प्रेम का मार्ग कहना, दुख के शैतानी स्वरूप को न जानना है। आप दुख की सीढ़ियों पर चढ़ते नहीं, बल्कि उतरते हैं। वे स्वर्ग की ओर नहीं, बल्कि नरक की ओर ले जाती हैं। दुख की सीढ़ी के निचले तल का अंधकार, आनंद की सीढ़ी के शीर्ष पर स्थित चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश की तुलना में कम शाश्वत या अनंत है।

दुःख अलगाव और वियोग उत्पन्न करता है; अपकेंद्रीय बल की तरह यह आपको जीवन के केंद्र से, ब्रह्मांड के उस केंद्र से दूर खींचता है जहाँ सभी चीजें एकता की ओर अग्रसर होती हैं। दिव्य सिद्धांत स्वयं को ब्रह्मांडीय संश्लेषण और सर्वस्व के सार में सहभागिता के प्रयास से अलग करता है। दूसरी ओर, शैतानी सिद्धांत विस्थापन और द्वैत का सिद्धांत है जो सभी दुःखों की विशेषता है। आनंद के माध्यम से, चाहे वह आध्यात्मिक हो या कामुक, आप भोलेपन से जीवन में भाग लेते

हैं; अनजाने में आप अस्तित्व की गतिशीलता में शामिल हो जाते हैं, आपके शरीर का प्रत्येक कण संपूर्ण के अतार्किक स्पंदनों के साथ कंपन करता है।

दुःख के कारण संसार से अलगाव अत्यधिक अंतर्मुखता की ओर ले जाता है और विरोधाभासी रूप से, चेतना के ऐसे उच्च स्तर तक पहुंचाता है कि संसार, अपनी समस्त भव्यता और अंधकार के साथ, बाह्य और पारलौकिक हो जाता है। इस प्रकार संसार से गहरे रूप से विमुख होकर, इतने अकेलेपन में, हम कुछ कैसे भूल सकते हैं? हम केवल वही भूलना चाहते हैं जिसने हमें दुःख दिया। हालांकि, किसी क्रूर और विरोधाभासी मोड़ के कारण, यादें तब लुप्त हो जाती हैं जब हम उन्हें याद करना चाहते हैं, लेकिन जब हम उन्हें भूलना चाहते हैं तो वे मन में स्थायी रूप से अंकित हो जाती हैं।

आम तौर पर मनुष्य दो श्रेणियों में आते हैं: एक वे जिनके लिए संसार आंतरिक अनुभव के अवसर प्रदान करता है और दूसरे वे जिनके लिए संसार बाह्य और वस्तुनिष्ठ रहता है। सच्चे आंतरिक अनुभव के लिए, वस्तुनिष्ठ अस्तित्व मात्र एक बहाना है। केवल इसी रूप में इसका कोई अर्थ हो सकता है, क्योंकि वस्तुनिष्ठ उद्देश्य को अनेक भ्रमों के बिना न तो समझाया जा सकता है और न ही उचित ठहराया जा सकता है, जिनकी मुख्य कमी यह है कि उन्हें गहरी दृष्टि से आसानी से पहचाना जा सकता है। सभी मनुष्य आग, तूफान, विस्फोट या प्राकृतिक दृश्य देखते हैं; लेकिन कितने लोग ज्वालाओं, बिजली, बवंडर या सामंजस्य को महसूस करते हैं? कितने लोगों के भीतर एक ऐसी आंतरिक सुंदरता है जो उनके दुख को रंग देती है? उदासीन लोगों के लिए, जिन्हें प्रकृति एक नीरस और ठंडी वस्तुनिष्ठता प्रदान करती है, जीवन, पूर्ण रूप से आनंदित होने पर भी, छूटे हुए अवसरों का योग है।

मेरी पीड़ा कितनी भी असहनीय हो, मेरा अकेलापन कितना भी गहरा हो, संसार से मेरी दूरी उसे और अधिक सुलभ बना देती है। यद्यपि मैं उसमें न तो कोई वस्तुनिष्ठ अर्थ पा सकता हूँ और न ही कोई पारलौकिक पूर्णता, फिर भी अपने अनेक रूपों के साथ अस्तित्व मेरे लिए आनंद और दुःख दोनों का स्रोत बना हुआ है। कभी-कभी एक फूल की सुंदरता ही मेरी दृष्टि में सार्वभौमिक पूर्णता के सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होती है, तो कभी-कभी आकाश की शांति भंग करने वाला सबसे छोटा बादल भी मेरे गहरे निराशावाद को फिर से जगा देता है। जो लोग अत्यधिक अंतर्मुखी होते हैं, वे प्रकृति के सबसे तुच्छ पहलुओं में भी प्रतीकात्मक अर्थ खोज लेते हैं।

क्या यह संभव है कि मेरे भीतर वह सब कुछ समाहित है जो मैंने अपने जीवन में देखा है? यह सोचना ही डरावना है कि वे सभी दृश्य, किताबें, भयावह अनुभव और उदात्तताएँ एक ही मस्तिष्क में समाहित हो सकती हैं। मुझे ऐसा लगता है जैसे वे वास्तविकता बनकर मुझमें समा गए हों और मुझ पर भारी बोझ डाल रहे हों। कभी-कभी मैं इतना अभिभूत हो जाता हूँ कि सब कुछ भूल जाना चाहता हूँ। अंतर्मन से आंतरिक पतन होता है, क्योंकि संसार आप में समा जाता है और अपने भारी भार से आपको कुचल देता है। तो क्या यह आश्चर्य की बात है कि कुछ लोग भूलने के लिए अश्लीलता से लेकर कला तक किसी भी चीज़ का सहारा लेते हैं?

मेरे पास कोई विचार नहीं हैं, केवल जुनून हैं। विचार तो किसी के भी हो सकते हैं। विचारों ने कभी किसी के पतन का कारण नहीं बनाया है।

एक अप्रत्यक्ष पशु

सभी मनुष्यों में एक ही दोष है: वे जीने के लिए प्रतीक्षा करते हैं, क्योंकि उनमें प्रत्येक क्षण को जीने का साहस नहीं होता। क्यों न प्रत्येक क्षण में इतनी ऊर्जा भर दी जाए कि वह अनंत काल जैसा लगे? हम सभी जीना तभी सीखते हैं जब हमारे पास अपेक्षा करने के लिए कुछ नहीं बचता, क्योंकि हम वर्तमान में नहीं, बल्कि एक अनिश्चित और दूर के भविष्य में जीते हैं। हमें क्षणिक प्रेरणाओं के अलावा किसी और चीज़ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें समय की चेतना के बिना प्रतीक्षा करनी चाहिए। तात्कालिकता के बिना कोई मुक्ति नहीं है। लेकिन मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो तात्कालिकता को नहीं जानता। वह एक अप्रत्यक्ष प्राणी है।

असंभव सत्य

हमारी खुशी कब से शुरू होनी चाहिए? जब हम खुद को यह यकीन दिला लें कि कोई सत्य नहीं है। तभी से सारी मुक्ति मिलती है, यहाँ तक कि शून्यता से भी मुक्ति। जो सत्य की असंभवता में विश्वास नहीं करता या उसमें आनंद नहीं लेता, उसके पास मुक्ति का केवल एक ही मार्ग है, जिसे वह कभी नहीं पा सकेगा।

आत्मीयता

जिन लोगों में आस्था नहीं होती, उनमें अति-आत्मनिष्ठा या तो अहंकार या आत्म-हीनता की ओर ले जाती है, अति प्रेम या अति आत्म-घृणा की ओर। दोनों ही स्थितियों में, आप समय से पहले ही अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। आत्मनिष्ठा आपको या तो ईश्वर बना देती है या शैतान।

होमो...

मनुष्य को तर्कशील प्राणी होना या बनना छोड़ देना चाहिए। उसे एक पागल बन जाना चाहिए, जो अपनी खतरनाक कल्पनाओं के लिए सब कुछ दांव पर लगा दे, जो उत्साह से भर जाए, और दुनिया की हर चीज के लिए मरने को तैयार हो, चाहे वह दुनिया में हो या न हो। हर मनुष्य का आदर्श मनुष्य होना छोड़ देना होना चाहिए। यह केवल पूर्ण मनमानी के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

संक्षेप में प्रेम

दुःख से उत्पन्न मानवता के प्रति प्रेम, दुर्भाग्य से उत्पन्न ज्ञान के समान है। दोनों ही मामलों में, जड़ें सड़ी हुई हैं और स्रोत विषैले हैं। केवल सच्ची उदारता और आत्म-त्याग से भरा सहज प्रेम ही दूसरों की आत्मा को पोषित कर सकता है। दुःख में जन्मा प्रेम इतने आँसू और आहें छुपाता है कि उसकी किरणें कड़वी स्पष्टता से रंगी हुई होती हैं। इस प्रेम में इतना कष्ट, त्याग और चिंता समाई होती है कि यह असीम सहनशीलता के सिवा कुछ नहीं हो सकता। आप सब कुछ क्षमा कर देते हैं, सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं, सब कुछ उचित ठहरा देते हैं। लेकिन क्या यह फिर भी प्रेम है? जब कोई सब कुछ से अलग हो जाए तो प्रेम कैसे कर सकता है? इस प्रकार का प्रेम उस आत्मा के शून्य को प्रकट करता है जो सब कुछ और कुछ नहीं के बीच अधर में लटकी हुई है, ठीक वैसे ही जैसे डॉन जुआन बनना टूटे हुए दिल का एकमात्र उपाय है। जहाँ तक ईसाई धर्म की बात है, वह प्रेम को नहीं जानता: वह केवल सहनशीलता या करुणा को जानता है, जो प्रेम के संकेत मात्र हैं, न कि स्वयं प्रेम।

कुछ भी मायने नहीं रखता है

सब कुछ संभव है, और फिर भी कुछ भी नहीं। सब कुछ जायज़ है, और फिर भी कुछ भी नहीं। हम चाहे जिस रास्ते पर चलें, कोई भी रास्ता दूसरे से बेहतर नहीं है। चाहे आप कुछ हासिल करें या न करें, विश्वास रखें या न रखें, सब एक जैसा ही है, ठीक वैसे ही जैसे चाहे आप रोएं या चुप रहें, सब एक जैसा ही है। हर चीज़ का कोई न कोई स्पष्टीकरण है, और फिर भी कोई स्पष्टीकरण नहीं है। सब कुछ वास्तविक और अवास्तविक, सामान्य और बेतुका, शानदार और नीरस दोनों है। कोई भी चीज़ किसी दूसरी चीज़ से ज़्यादा मूल्यवान नहीं है, न ही कोई विचार किसी दूसरे विचार से बेहतर है। अपने दुख से दुखी क्यों हों और अपनी खुशी में आनंद क्यों लें? क्या फर्क पड़ता है कि हमारे आंसू सुख से आते हैं या दुख से? अपने दुख से प्यार करो और अपनी खुशी से नफरत करो, सब कुछ मिला दो, सब कुछ उलट-पुलट कर दो! हवा में नाचते हुए बर्फ के टुकड़े की तरह बनो, धारा में बहते हुए फूल की तरह! जब ज़रूरत न हो तब भी साहस रखो, और जब बहादुर होना ज़रूरी हो तब कायर बनो! कौन जानता है? हो सकता है तुम फिर भी जीत जाओ! और अगर हार भी जाओ, तो क्या सच में कोई फर्क पड़ता है? क्या इस दुनिया में जीतने जैसा कुछ है भी? हर लाभ हानि है, और हर हानि लाभ है। हमेशा एक निश्चित रुख, स्पष्ट विचार और सार्थक शब्दों की अपेक्षा क्यों करें? मुझे ऐसा लगता है मानो मुझसे पूछे गए या न पूछे गए हर प्रश्न के उत्तर में मुझे आग उगलनी चाहिए।

बुराई के स्रोत

हम दुख से कैसे लड़ सकते हैं? अपने भीतर से संघर्ष करके, क्योंकि दुख भीतर से आता है, बाहर से नहीं। यदि हम लगातार खुद को याद दिलाते रहें कि सब कुछ हमारी चेतना का प्रतिबिंब मात्र है, जो हमारी इंद्रियों की तीव्रता के अनुसार कम या ज्यादा स्पष्ट होता है, तो हम स्पष्टता की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकते हैं जिसमें वास्तविकता अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाएगी। हम सुख की आकांक्षा नहीं कर सकते, केवल दुख को कम करने की आकांक्षा कर सकते हैं।

निराशा में जीना महान सहनशीलता का प्रतीक है, जबकि घोर दुख के बाद सुस्त और मूर्ख हो जाना कमी का संकेत है। दुख को कम करने के लिए आत्म-संयम और निरंतर आंतरिक प्रयास आवश्यक हैं। दूसरी ओर, सुख प्राप्त करने के सभी प्रयास पूरी तरह व्यर्थ हैं। एक बार दुख के मार्ग पर चलने के बाद आप वापस नहीं लौट सकते; यह एक ऐसा मार्ग है जिससे वापसी संभव नहीं है। सुख से दुख भी हो सकता है, इसलिए सुख में दुख की तुलना में अधिक अप्रिय आश्चर्य होते हैं। जब हम सुखी होते हैं तो दुनिया हमें सही लगती है; दुखी होने पर हम चाहते हैं कि दुनिया कुछ और ही हो। यद्यपि हम पूरी तरह से जानते हैं कि दुख का स्रोत हमारे भीतर ही है, फिर भी हम अपनी व्यक्तिगत कमी को आध्यात्मिक कमी में बदल देते हैं।

दुःख कभी भी दुनिया में अपने अंधकार को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त उदार नहीं होगा। अपनी व्यक्तिपरक दुर्दशा को वस्तुनिष्ठ दुर्दशा से प्रतिस्थापित करके, हम अपने बोझ को हल्का करने और उन निंदाओं से बचने की आशा करते हैं जो वास्तव में हमें स्वयं को ही करनी चाहिए। लेकिन इस प्रकार का वस्तुनिष्ठीकरण वास्तव में हमारे दुःख को और गहरा कर देता है और इसे ब्रह्मांडीय नियति के रूप में प्रस्तुत करके, इसे कम करने या इसे अधिक सहनीय बनाने की किसी भी संभावना को समाप्त कर देता है।

दुःख को नियंत्रित करने से चिंता कम होती है और पीड़ादायक आश्चर्य भी कम होते हैं; यह पीड़ा को कम करता है और कष्ट को सीमित करता है। यह एक आंतरिक नाटक का आवरण है, पीड़ा का एक सूक्ष्म मुखौटा है। सौंदर्य के जादुई करतब।

जैसे-जैसे मनुष्य सुख के निकट आता है, सौंदर्य के प्रति उसकी संवेदनशीलता बढ़ती जाती है। सौंदर्य में ही सब कुछ अपना औचित्य, अपना अस्तित्व पाता है। हम सुंदर वस्तु को उसके वास्तविक स्वरूप में ही देखते हैं। एक चित्र या एक परिदृश्य हमें इतना आनंदित करता है कि हम उसकी कल्पना उसके वास्तविक स्वरूप के अलावा किसी और रूप में नहीं कर सकते। संसार को सौंदर्य के प्रतीक के अंतर्गत रखना यह अभिकथन करना है कि वह जैसा होना चाहिए वैसा ही है। तब सब कुछ एक शानदार सामंजस्य में बदल जाता है, और अस्तित्व के नकारात्मक पहलू भी उसकी महिमा और आकर्षण को ही बढ़ाते हैं। सौंदर्य हमें मोक्ष नहीं दिलाएगा, लेकिन यह हमें सुख के निकट अवश्य ले जाएगा। विरोधाभासों से भरे संसार में क्या सौंदर्य को बख्शा जा सकता है? इसकी विशिष्ट प्रकृति और आकर्षण इस तथ्य में निहित है कि यह केवल वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से ही विरोधाभासी है। सौंदर्यशास्त्र इस विरोधाभास को व्यक्त करता है: रूप के माध्यम से निरपेक्ष का प्रतिनिधित्व करना, अनंत को वस्तुनिष्ठ, परिमित आकार देना। रूप में निरपेक्ष, अर्थात् सीमित अभिव्यक्तियों में सन्निहित, स्वयं को केवल उसी के समक्ष प्रकट करता है जो सौंदर्यबोध

से अभिभूत होता है; किसी भी अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह एक विरोधाभास है। इसी कारण सौंदर्य के किसी भी आदर्श में असीम भ्रम निहित है। लेकिन इससे भी बुरी बात यह है कि किसी भी आदर्श सौंदर्य का मूल आधार - कि संसार वैसा ही है जैसा होना चाहिए - जांच में खरा नहीं उतरता। संसार जैसा है उससे भिन्न हो सकता है।

मनुष्य की असंगति

पुरुष किसी न किसी चीज़ को हासिल करने पर इतना ज़ोर क्यों देते हैं? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वे शांत और स्थिर होकर सूर्य के नीचे स्थिर खड़े रहें? आखिर हासिल करने के लिए क्या है? इतनी मेहनत और महत्वाकांक्षा क्यों? मनुष्य मौन का अर्थ भूल चुका है। यद्यपि चेतना एक मूलभूत कमी की उपज है, यह हर व्यक्ति में अनुकूलनशीलता की कमी का कारण नहीं है; बल्कि कुछ लोगों में तो इसने उनकी जीवन प्रवृत्ति को और भी तीव्र कर दिया है। वर्तमान में जीने में असमर्थ, मनुष्य ऐसी वस्तुओं का संग्रह करता है जो उस पर बोझ डालती हैं और उसे वश में कर लेती हैं; भविष्य का भय उसके लिए विपत्ति बन जाता है। चेतना ने मनुष्यों को दो श्रेणियों में बाँट दिया है, जो समान रूप से असंतुलित और दुखी हैं: एक वे जो आत्म-संयम, आत्म-यातना और त्रासदी में लिप्त हैं, और दूसरे वे जो अधिग्रहण और स्वामित्व की साम्राज्यवादी लालसा से ग्रस्त हैं। चेतना ने मनुष्य को पशु और मनुष्य को दानव बना दिया, लेकिन इसने कभी किसी को ईश्वर नहीं बनाया, चाहे संसार क्रूस पर एक ईश्वर को मारने पर कितना ही गर्व क्यों न करे।

जो लोग बुराई से अछूते हैं, उनसे दूर रहो, क्योंकि उनकी नीरसता उबाऊ होती है। उनकी बातचीत नैतिकता के अलावा और किस बारे में होगी? जिसने नैतिकता से परे जाकर जीवन के अवसरों का पूर्ण रूप से अनुभव नहीं किया है, उसने अपने पापों का रूपांतरण नहीं किया है। सच्चा अस्तित्व वहीं से शुरू होता है जहाँ नैतिकता समाप्त होती है; उसके बाद ही वह हर चीज का प्रयोग कर सकता है, हर जोखिम उठा सकता है, भले ही सफलता के मार्ग में बाधाएँ हों। अनगिनत रूपांतरणों के माध्यम से ही कोई उस क्षेत्र तक पहुँच सकता है जहाँ सब कुछ जायज़ है, जहाँ आत्मा बिना किसी पश्चाताप के अश्लीलता, उदात्तता या विचित्रता में इस हद तक विलीन हो सकती है कि जीवन की कोई भी दिशा या रूप अनछुआ न रह जाए। सामान्य अस्तित्व पर शासन करने वाला अत्याचार लुप्त हो जाता है और उसकी जगह अद्वितीय अस्तित्व की पूर्ण सहजता ले लेती है, जिसका अपना नियम होता है। क्या नैतिकता ऐसे प्राणी की सेवा कर सकती है - जो शायद सबसे उदार होने के साथ-साथ सबसे बेतुका भी है, जो पूरी दुनिया का त्याग करने में सक्षम है, और परिणामस्वरूप जो कुछ भी दिया जा सकता है, वह सब दे देता है? उदारता नैतिकता के साथ असंगत है, जो रीति-रिवाजों का युक्तिकरण और जीवन का यंत्रीकरण है। कोई भी उदार कार्य बेतुका है, एक ऐसा त्याग जो आम आदमी में कभी नहीं देखा जाता, जो अपनी तुच्छता को छिपाने के लिए नैतिकता का आवरण ओढ़ लेता है। जो कुछ भी वास्तव में नैतिक है, वह नैतिकता से परे है। इसके नियमों की तुच्छता, पाप की निंदा में सबसे अधिक स्पष्ट होती है, जो शरीर में आत्मा की उपस्थिति से उत्पन्न शारीरिक त्रासदी की अभिव्यक्ति है। पाप शरीर की त्रासदी है, शरीर अपनी ही नियति से फूटकर, अपनी भावुक इच्छाओं को जकड़ने वाली बेड़ियों को तोड़ने का प्रयास करता है। एक शारीरिक थकावट नसों और शरीर को ऐसी निराशा की ओर

ले जाती है जिसे केवल सुख के सभी रूपों की खोज से ही दूर किया जा सकता है। पाप में, असामान्य का आकर्षण एक परेशान करने वाली चिंता पैदा करता है: आत्मा रक्त बन गई प्रतीत होती है और शरीर में एक अंतर्निहित शक्ति की तरह हलचल मचाती है। आत्मा की भागीदारी के बिना संभावनाओं की खोज संभव नहीं है। पाप व्यक्ति की विजय है; बाहरी हस्तक्षेप के बिना शरीर व्यक्ति का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है? शरीर और आत्मा, रक्त और चेतना का मिलन, बुराई के जाल में फँसे व्यक्ति के लिए एक अत्यंत समृद्ध उमंग पैदा करता है। सीखी हुई, नकल की हुई या उधार ली गई बुराई से बदतर कुछ नहीं है; इसलिए बुराई का तर्कसंगत बचाव अनुचित है: सर्वोत्तम रूप से, इसकी उर्वरता को उन लोगों के लिए ही माना जा सकता है जो इसे रूपांतरित करना जानते हैं, जो इसके विचलन को मोड़ सकते हैं। इसे आपराधिक और अशिष्ट तरीकों से अपनाना इसकी निंदनीय भौतिकता का शोषण करना और उस अमूर्त रोमांच की अनदेखी करना है जो इसकी उत्कृष्टता का निर्माण करता है। कुछ ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए, घनिष्ठता बुराई की चिंताओं से मुक्ति नहीं दिला सकती। किसी भी दुष्ट व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं ठहराया जा सकता जब तक वह बुराई को बहाना मानना बंद न कर दे और उसे लक्ष्य न बना ले।

संधिपत्र

निराशावादी कैसे बनता है? गहरी आंतरिक उथल-पुथल से उत्पन्न एक स्वाभाविक निराशा, बिना किसी बाहरी प्रेरणा के, निरंतर अवसाद का कारण बनती है जो जीवन के उत्साह को कुचल देती है और जीवन की जड़ों पर प्रहार करती है। यह मानना गलत है कि निराशावादी में कोई स्वाभाविक कमी या कमजोर जीवन शक्ति होती है। वास्तव में, केवल वे लोग ही निराशावादी बनते हैं जो जीवन से प्रेम करते हैं, भले ही अनजाने में ही सही। यह जीवन-क्षयकारी प्रक्रिया बाद में अवसाद के परिणामस्वरूप होती है, क्योंकि केवल भावुक और दूरदर्शी व्यक्तियों में ही अवसाद में इतना क्षरण करने की क्षमता होती है कि वह जीवन को उसी प्रकार निगल जाता है जैसे लहरें तट को निगल जाती हैं। कमजोर व्यक्ति में, अवसाद न तो तनाव, न संकट, न ही अतिरेक का कारण बनता है; यह उदासीनता और धीमी मृत्यु की ओर ले जाता है। निराशावादी एक स्वाभाविक विरोधाभास का प्रतिनिधित्व करता है जिसके अनसुलझे विरोधाभास एक तीव्र उमंग उत्पन्न करते हैं। क्या बार-बार आने वाले अवसाद और उतनी ही बार आने वाले उत्साह का यह संयोजन एक विरोधाभासी स्थिति नहीं है? यह स्पष्ट है कि अवसाद जीवन शक्ति को कमजोर और समाप्त कर देता है, क्योंकि अवसाद जीवन पर आक्रमण है। इनसे लड़ने का कोई कारगर तरीका नहीं है: कड़ी मेहनत और मनोरंजन से ये अस्थायी रूप से शांत हो सकते हैं। केवल वही व्यक्ति निराशावादी हो सकता है जिसमें अदम्य ऊर्जा भरी हो। आप तभी निराशावादी बनते हैं - एक राक्षसी, मौलिक, पाशविक निराशावादी - जब जीवन अवसाद से लड़ते हुए कई बार हार चुका होता है। तब नियति मनुष्य की चेतना में एक अपूरणीय रूप में उभरती है।

खामोशी का सामना करना

एक बार जब आप मौन को अत्यधिक महत्व देने लगते हैं, तो आप हाशिये पर जीवन की एक मूलभूत अभिव्यक्ति को पा लेते हैं। महान एकांतवासियों और धर्मों के संस्थापकों की मौन के प्रति श्रद्धा की जड़ें हमारी सोच से कहीं अधिक गहरी हैं। मनुष्यों की उपस्थिति असहनीय रही होगी और उनकी जटिल समस्याएं घृणित रही होंगी, तभी किसी को मौन के अलावा किसी और चीज की परवाह नहीं रही होगी।

लगातार थकान मौन के प्रति प्रेम को बढ़ावा देती है, क्योंकि मौन में शब्द अपना अर्थ खो देते हैं और कानों को यांत्रिक हथौड़ों की खोखली ध्वनि से भर देते हैं; अवधारणाएँ कमजोर पड़ जाती हैं, अभिव्यक्ति अपनी शक्ति खो देती है, शब्द वीरान रेगिस्तान की तरह बंजर हो जाते हैं। बाहरी दुनिया का उतार-चढ़ाव एक दूरस्थ नीरस बड़बड़ाहट जैसा लगता है जो रुचि या जिज्ञासा जगाने में असमर्थ होता है। तब आपको राय व्यक्त करना, कोई पक्ष लेना, कोई प्रभाव डालना व्यर्थ लगेगा; जिन शोरों का आपने त्याग किया है, वे आपकी आत्मा की चिंता को बढ़ा देते हैं। सभी समस्याओं को हल करने के लिए अथक प्रयास करने के बाद, निराशा की चरम सीमाओं पर कष्ट सहने के बाद, परम ज्ञानोदय के क्षण में, आप पाएंगे कि एकमात्र उत्तर, एकमात्र वास्तविकता, मौन है।

द डबल एंड हिज आर्ट

मनोविज्ञान की कला सीखी नहीं जाती, बल्कि इसे जिया और अनुभव किया जाता है, क्योंकि कोई भी विज्ञान आपको आत्मा के रहस्यों की कुंजी नहीं दे सकता। स्वयं को अध्ययन का विषय बनाए बिना, अपने मामलों की जटिलता में प्रतिदिन रुचि दिखाए बिना कोई अच्छा मनोवैज्ञानिक नहीं बन सकता। दूसरे के रहस्यों को जानने के लिए, पहले आपको अपने स्वयं के रहस्यों को जानना होगा। मनोवैज्ञानिक बनने के लिए, आपको इतना दुखी होना चाहिए कि आप खुशी को समझ सकें, इतना परिष्कृत कि आप किसी भी क्षण बर्बर बन सकते हैं, और इतना तीव्र रूप से निराश कि आपको पता ही न चले कि आप रेगिस्तान में रह रहे हैं या आग के बीच में। परिवर्तनशील, समान रूप से अभिकेन्द्रीय और अपकेन्द्रीय, आपका परमानंद सौंदर्यपरक, यौन, धार्मिक और विकृत होना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक समझ का उत्कृष्ट विकास आत्मचिंतन से भरे जीवन का परिणाम है, एक ऐसा जीवन जो स्वयं को अन्य जीवन में अनेक दर्पणों की तरह देखता है; एक मनोवैज्ञानिक के लिए, सभी मनुष्य स्वयं के अंश हैं। दूसरों के प्रति मनोवैज्ञानिक की घृणा में एक गुप्त और असीम आत्म-व्यंग्य का अंश निहित होता है। कोई भी प्रेम से मनोविज्ञान का अभ्यास नहीं करता: बल्कि यह एक प्रकार का क्रूरतापूर्ण व्यवहार है, दूसरे के अंतरंग अस्तित्व पर अधिकार करके, उसकी रहस्यमय आभा को छीनकर उसे नष्ट करने की इच्छा है। मनुष्यों और उनके सीमित संसाधनों को शीघ्र ही समाप्त कर देने वाला मनोवैज्ञानिक आसानी से ऊब जाता है, क्योंकि वह इतना भोला नहीं होता कि उसके मित्र हों और इतना आत्म-सचेत होता है कि उसके प्रेमी न हों। संशयवाद मनोविज्ञान की शुरुआत नहीं बल्कि उसका स्वाभाविक अंत है। यह रहस्यों का उल्लंघन करने वाले, उस अत्यंत विवेकहीन व्यक्ति के लिए प्रकृति का दंड है, जिसने ज्ञान में बहुत कम भ्रम पाले और अंततः मोहभंग में परिणत हुआ।

थोड़ा ज्ञान आनंददायक होता है; अत्यधिक ज्ञान घृणित। जितना अधिक ज्ञान, उतना ही कम जानने की इच्छा होती है। जिसने ज्ञान का कष्ट नहीं सहा, उसने कभी कुछ जाना ही नहीं।

बकवास

जब घड़ी की टिक-टिक अनंत सन्नाटे को तोड़ देती है, और आपको शांत चिंतन से जगा देती है, तो समय की निरर्थकता, भविष्य की ओर उसके बढ़ते कदम, और विकास और प्रगति के बारे में सारी बकवास पर नाराज़गी होना लाज़मी है। आगे क्यों बढ़ें, समय में क्यों जिएं? ऐसे क्षणों में समय का अचानक प्रकट होना, उसे एक ऐसी सर्वोपरि महत्ता प्रदान करना जो अन्यथा अस्तित्वहीन होती है, जीवन के प्रति तीव्र तिरस्कार, आगे न बढ़ने की अनिच्छा का परिणाम है। यदि यह प्रकटन रात में होता है, तो समय की निरर्थकता में अकथनीय एकांत की अनुभूति जुड़ जाती है, क्योंकि तब, भीड़ से दूर, आप अकेले समय का सामना करते हैं, आप दोनों एक अटूट द्वंद्व में फँस जाते हैं। इस रात्रि सन्नाटे में, समय अब क्रियाओं और वस्तुओं से भरा नहीं रहता: यह एक निरंतर बढ़ती हुई शून्यता, एक फैलता हुआ शून्य, परे से एक खतरा बन जाता है। तब सन्नाटा एक मृत ब्रह्मांड के लिए बजती घंटियों के शोकपूर्ण शोर से गूंज उठता है। इस नाटक को वही जीता है जिसने समय को अस्तित्व से अलग कर दिया है: अस्तित्व से भागते हुए वह समय

के द्वारा कुचल दिया जाता है। और वह महसूस करता है कि कैसे समय, मृत्यु की तरह, अपना प्रभाव जमाता जाता है।

ई. एम. सियोरान: एक संक्षिप्त कालक्रम

1911 - ई. एम. सियोरान का जन्म 8 अप्रैल को दक्षिणी ट्रांसिल्वेनिया में सिबिउ शहर के पास रासिनारी में हुआ, जो उस समय भी ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य का हिस्सा था। उनके पिता एक रोमानियाई ऑर्थोडॉक्स पादरी थे।

1920-28 - उन्होंने सिबिउ में हाई स्कूल में पढ़ाई की।

1929-31 - उन्होंने बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया, जहाँ उन्होंने हेनरी बर्गसन पर एक शोध प्रबंध लिखा।

1934 - उनकी पहली पुस्तक, 'ऑन द हाइट्स ऑफ डेस्पेयर', बुखारेस्ट में किंग कैरोल द्वितीय फाउंडेशन फॉर आर्ट एंड लिटरेचर द्वारा प्रकाशित हुई। इसे फाउंडेशन का युवा लेखकों के लिए प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुआ।

1936 - उन्होंने दर्शनशास्त्र में शिक्षण प्रमाणपत्र प्राप्त किया। कार्टेआ अमगिरिलोर (भ्रमों की पुस्तक)।

1937 - &n

***** end *****

sjeet